श्रीत्रिमल्लभट्टविरचिता

अलङ्कारमञ्जरी

सम्पादक :
डॉ० बृजेश कुमार शुक्ल

अखिल भारतीय संस्कृत-परिषद्
लखनऊ

अलङ्कारमञ्जरी

श्रीत्रिमल्लभट्टविरचिता

अलङ्कारमञ्जरी

(सम्पादकेन प्रणीतया 'भ्रमरी'-संस्कृतटीकया संवलिता)

सम्पादक, टीकाकार तथा अनुवादक

डॉ० बृजेश कुमार शुक्ल

प्रवक्ता

संस्कृत तथा प्राकृत भाषा-विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय

लखनऊ



अखिल भारतीय संस्कृत-परिषद्

लखनऊ

प्रकाशिका :
अखिल भारतीय संस्कृत-परिषद्
महात्मा गाँधी मार्ग
हज़रतगंज
लखनऊ–२२६००१

प्रथम संस्करण
१९९५

मूल्य : २५.०० रुपये
$ ५.००

मुद्रक :
प्नार मुद्रक
११७, नज़ीराबाद
लखनऊ–२२६००१

समर्पणम्

मसृणितकरमृष्टः शैशवे पोषितोऽहं
ललितलपनलापैर्लालितो येन बाल्ये ।
नयविनयवचोभिः प्रेरितो यस्य नित्यं
जनकचरणपद्मे मञ्जरीमर्पयामि ॥

मसृण करतलों से जिसने शैशव में सहलाया है
ललितालापों से जिसने बचपन में बहलाया है।
उन्हीं पितृ-वचनामृत से जीवन प्रेरणामय है
जनक-चरण में कृति-पुष्पार्पण ही मेरा आशय है ॥

बृजेशः

प्रकाशकीय

अखिल भारतीय संस्कृत-परिषद् के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य अप्राप्य अथवा दुष्प्राप्य संस्कृत-ग्रन्थों का प्रकाशन भी है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए परिषद् पहले भी कुछ अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन कर चुकी है। इस प्रकार के ग्रन्थों में एक ग्रन्थ अवधूतसिद्ध-कृत **'भक्तिस्तोत्र'** भी है, जिसका सम्पादन यशःशेष म० म० पं० गोपीनाथ कविराज द्वारा किया गया था। इसके अतिरिक्त 'धीकोटिदकरणम्' 'बीजगणितावतंसः', 'स्वात्मोपलब्धिशतकम्' आदि ग्रन्थों का प्रकाशन भी परिषद् द्वारा किया जा चुका है। इसी परम्परा में डॉ० वृजेश कुमार शुक्ल द्वारा सम्पादित 'अलङ्कारमञ्जरी' को विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है।

'अलङ्कारमञ्जरी' के सम्पादन में विद्वान् लेखक ने प्रायः सभी उपलब्ध हस्तलेखों का प्रयोग किया है। संस्कृत-टीका तथा हिन्दी-व्याख्या के द्वारा ग्रन्थ की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गयी है। उदीयमान और प्रबुद्ध सम्पादक ने सम्पादन में जितना परिश्रम किया हैं, उसके लिए वह साधुवाद का पात्र है।

ग्रन्थ के वास्तविक पारखी तो विद्वान् पाठक और आलोचक ही होते हैं। उनके समक्ष यह 'मञ्जरी' प्रस्तुत है। आशा है सहृदय रसिक इस 'मञ्जरी' के रस का पान करके तृप्त अवश्य होंगे।

कृष्ण-जन्माष्टमी
१८ अगस्त, १९९५

जगदम्बा प्रसाद सिनहा
मन्त्री

पुरोवाक्

ऋग्वेद से प्रारम्भ करके अद्यतन साहित्य-पर्यन्त यदि अवलोकन किया जाय, तो अलङ्कारों की स्थिति अपरिहार्यरूपेण वाङ्मय के शोभातिशय का हेतु है। व्यञ्जनाश्रित न होकर यदि केवल अभिधा के द्वारा किसी काव्यादि का प्रणयन करना है तो भङ्गीभणिति अवश्य होनी चाहिए, अन्यथा साधारण वार्ता तथा साहित्य में कोई अन्तर ही दृष्टि-पथ पर नहीं आयेगा। अभिधा को विभूषित करने वाली यही भङ्गीभणिति अलङ्कार हैं। यद्यपि समासोक्ति, पर्यायोक्त, विशेषोक्ति आदि में व्यङ्ग्य अर्थ रहता है तथापि वहाँ वाच्य (अभिधेय) अर्थ की ही प्रधानता होती है। अतः विचित्र भङ्गीभणिति ही विच्छित्ति का मूल है और यही अलङ्कार की कोटि में आती है। अलङ्कार शब्द, अर्थ तथा शब्दार्थोभय के भेद से तीन प्रकार के कहे जा सकते हैं। अन्य आचार्यों ने सादृश्यमूलक इत्यादि भेद से प्रकारान्तर से अलङ्कारों का विभाजन किया है। अलङ्कार-सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है। भरतमुनि, भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट आदि सभी ने एक मत से काव्य में अलङ्कारों को अङ्गीकार किया है। ध्वनिसम्प्रदाय के उत्थान के बाद अलङ्कारों का प्रयोग काव्य में आवश्यक नहीं माना गया। इसका कारण शब्दार्थ के बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक व्यङ्ग्यार्थ-जन्य सौन्दर्य के प्रति आचार्यों की प्रवृत्ति ही है। परन्तु अलङ्कारों की इतनी प्रतिष्ठापना हो चुकी थी कि पूर्णतया उसका वर्जन दुष्कर था, इसीलिए काव्यलक्षण में "अनलङ्कृती पुनः क्वापि" कहने वाले आचार्य मम्मट को भी अलङ्कारध्वनि स्वीकार करनी पड़ी। यहाँ तक कि आचार्य आनन्दवर्धन ने भी वस्तुध्वनि, अलङ्कारध्वनि तथा रसध्वनि तीन प्रकार की ध्वनि स्वीकार की है। उन्होंने ध्वनि स्थापना के सन्दर्भ में अलङ्कारों के सम्बन्ध में भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। रुय्यक, मम्मट आदि ने अपने-अपने ग्रन्थों में अलङ्कारों के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। काव्यशास्त्र के चरम युग में विश्वनाथ, विद्याधर, जयदेव, अप्पय दीक्षित, पण्डितराज जगन्नाथ आदि

आचार्यों ने अलङ्कारों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है। भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट, रुय्यक आदि तथा मम्मट, जयदेव, अप्पय दीक्षित आदि आचार्यों के अलङ्कार-लक्षणों में भिन्नता अवश्य है। कालान्तर में अनेक आचार्यों ने शनैः शनैः अलङ्कार-लक्षणों का स्वबुद्ध्यनुसार परिष्कार किया है। कदाचित् यही लक्षण-वैभिन्न्य का कारण है। संक्षेप में अलङ्कार की परम्परा प्रायः प्रारम्भ से लेकर अद्यपर्यन्त अक्षुण्ण ही रही है।

'अलङ्कारमञ्जरी' जिसका सम्पादन, संस्कृत टीका तथा अनुवाद प्रस्तुत पुस्तक में विहित है, श्रीत्रिमल्लभट्ट द्वारा प्रणीत कही जाती है। लगभग चौदहवीं शताब्दी की इस रचना में केवल अर्थालङ्कारों का ही प्रतिपादन किया गया है, जिस पर प्राचीन आचार्य दण्डी, वामन, रुद्रट तथा रुय्यक का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसमें ३९ अलङ्कारों के लक्षण सूत्र शैली में कहे गये हैं। इसके अतिरिक्त अलङ्कारों के उदाहरण भी श्रीत्रिमल्लभट्ट द्वारा रचित हैं। प्रत्येक अलङ्कार का उदाहरण रमणीय, सहज तथा सरल है। ग्रन्थ के श्लोकों की सङ्ख्या ४३ है। यह ग्रन्थ लघुकाय होते हुए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अलङ्कारों के लक्षण में त्रिमल्लभट्ट ने अपनी मौलिकता भी दिखायी है, जो अलङ्कारों पर शोध-हेतु एक नयी दृष्टि है। पी० वी० काणे तथा डॉ० सुशीलकुमार डे ने भी इस ग्रन्थ का उल्लेख पाण्डुलिपि के रूप में किया है। कदाचित् अत्यन्त लघु कलेवर के कारण इस 'अलङ्कारग्रन्थ' का प्रकाशन नहीं हो सका। लखनऊ विश्वविद्यालय के टैगोर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि-विभाग में 'अलङ्कारमञ्जरी' की एक प्रति सुरक्षित थी, जिसका उपयोग प्रस्तुत सम्पादन में किया गया है। इसके अतिरिक्त भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना से दो पाण्डुलिपियों की फोटो-प्रति प्राप्त करके तीन मातृकाओं के द्वारा 'अलङ्कारमञ्जरी' का सम्पादन-कार्य प्रस्तुत किया गया। तत्पश्चात् सम्पादक ने सूत्रों की दुरूह शैली को समझाने हेतु 'भ्रमरी' नामक संस्कृत-टीका तथा हिन्दी-अनुवाद उपोद्घात-सहित लिखकर संस्कृतज्ञों के चरणों में समर्पित करने का दुस्साहस किया है।

इस कार्य के प्रोत्साहन में अजस्रा-सम्पादक तथा संस्कृत विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय के उपाचार्य गुरुप्रवर डॉ० अशोककुमार कालिया धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने समय-समय पर मेरे कार्य का अवलोकन करके मुझे निर्दिष्ट किया तथा 'अलङ्कारमञ्जरी' को ('भ्रमरी' संस्कृत-टीका के साथ) 'अजस्रा' नामक पत्रिका में प्रकाशित किया। सम्पादक लखनऊ

विश्वविद्यालय के टैगोरपुस्तकालयीय पाण्डुलिपि अनुभागाध्यक्ष तथा भण्डारकर प्राच्य शोध-संस्थान के क्यूरेटर महोदय के प्रति अपना आभार व्यक्त करता है, जहाँ से 'अलङ्कारमञ्जरी' की पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हुईं।

'अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् ने प्रस्तुत ग्रंथ का प्रकाशन सहर्ष स्वीकार किया है, अतः सम्पादक परिषद् के मन्त्री महोदय तथा अभिनवगुप्त संस्थान, लखनऊ विश्वविद्यालय के निदेशक प्रो० जे० पी० सिनहा जी के प्रति श्रद्धावनत है जिनकी कृपा उसे सदैव प्राप्त होती रही है। इसके अतिरिक्त सम्पादक डॉ० बी०के०पी०एन० सिंह, निदेशक एकाडमिक स्टाफ कालेज लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ तथा डॉ० ओम् प्रकाश पाण्डेय उपाचार्य संस्कृत-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ को भी धन्यवाद देता है जिन्होंने इस कार्य में प्रोत्साहन प्रदान किया। प्रो० रेवाप्रसाद द्विवेदी, वाराणसी के प्रति भी सम्पादक कार्तज्ञ्य ज्ञापन करता है जिन्होंने 'भ्रमरी' टीका पर अपना महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया था।

संस्कृतानुरागियों के चरणों में सभ्रमरी 'अलङ्कारमञ्जरी' समर्पित करते हुए सम्पादक नितान्त हर्षानुभूति से उद्वेलित हो रहा है कि यदि यह अपने परिमल से विद्वज्जनों को आह्लादित कर सकी, उनकी स्पृहणीयता को प्राप्त हो सकी अथवा उनकी 'शिरोऽलङ्कारभ्रमरी' बन सकी तो अवश्य सम्पादक सफल और कृतार्थ हो सकेगा।

॥ इतिशम् ॥

विद्वच्चरणानुरागी

श्रावणी — डॉ० बृजेशकुमार शुक्ल

२०५२ विक्रम-संवत्।

विषयानुक्रमणिका

॥ इति विषयानुक्रमणिका ॥

उपोद्घातः

वेदस्याऽपौरुषेयत्वाद् भारतीयवाङ्मये सर्वासां विद्यानामुत्सो वेद एव मन्यते। काव्यालङ्कारशास्त्रमपि वेदादेव निःसृतमिति विदुषां मतं वरीवर्ति। सर्वेषामलङ्काराणां मध्ये शैलूषीस्वरूपोपमा त्वृग्वेदमन्त्रेषु बहुधा दृश्यते। ततश्चाऽन्यासु संहितासु ब्राह्मणादिग्रन्थेषु चाऽलङ्कारसाम्राज्यं नरीनर्ति। रामायण-महाभारतयोरनेकेषामलङ्काराणां प्रयोगं दृष्ट्वाऽग्निपुराणकारः स्वग्रन्थेऽलङ्कारशास्त्रस्य सविस्तरं वर्णनं चकार। कतिपयानामलङ्काराणां लक्षणं भरतमुनिना नाट्यशास्त्रेऽपि विहितम्। ततो भामहाचार्योऽलङ्कारशास्त्रस्य कदाचित्प्रथमं 'काव्यालङ्कारा'भिधानं ग्रन्थं प्रणिनाय। भामह एवाऽलङ्कारशास्त्रस्य प्रथम आचार्यो मन्यते। आचार्यभामहादारभ्याऽष्टादशशताब्दीतो विश्वेश्वरपण्डितपर्यन्तमालङ्कारिकाणां परम्पराऽक्षुण्णैवाऽतिष्ठत्। एतस्यामलङ्कारशास्त्रस्य परम्परायामनेके वादाः प्रचलिता अभवन्, बहवोऽलङ्कारग्रन्थाश्च लिखिताः। यथा दण्डिनः 'काव्यादर्शः', उद्भटस्य 'काव्यालङ्कारसारसङ्ग्रहः', वामनस्य 'काव्यालङ्कारसूत्रम्', रुद्रटस्य 'काव्यालङ्कारः', मम्मटस्य 'काव्यप्रकाशः', रुय्यकस्याऽलङ्कारसर्वस्वम्, वाग्भट्टस्य 'वाग्भटालङ्कारः', हेमचन्द्रस्य 'काव्यानुशासनम्' जयदेवस्य 'चन्द्रालोकः', अप्पयदीक्षितस्य 'कुवलयानन्दः' विश्वनाथस्य 'साहित्यदर्पणः' 'विद्याधरस्यैकावली' विद्यानाथस्य 'प्रतापरुद्रयशोभूषणम्' कर्णपूरस्या'ऽलङ्कारकौस्तुभः' केशवमिश्रस्य 'अलङ्कारशेखरः' पण्डितराजजगन्नाथस्य 'रसगङ्गाधर'श्चेति ग्रन्था अलङ्काराणां विवरणं साङ्गोपाङ्गत्वेन प्रस्तुवन्ति। एतस्यामलङ्कारग्रन्थपरम्परायां

त्रिमल्लभट्टविरचिता 'अलङ्कारमञ्जरी' ति नामधेयो लघुकायग्रन्थोऽपि वर्तते। अतिलघुत्वादस्य ग्रन्थस्य मन्येऽद्यावधि नाऽयं विद्वज्जनवल्लभत्वमुपगतः, एतस्मादेव चायं न प्रकाशितोऽभवत् । अस्य ग्रन्थस्य मातृका हस्तलिखितग्रन्थागारेषु यत्र तत्र बह्व्यः समुपलभ्यन्ते । एतासां मध्ये तिसृणां मातृकाणां पाठानवलम्ब्य 'अलङ्कारमञ्जरी'-ग्रन्थस्य सम्पादनं विहितम् । सम्पादने प्रयुक्तानां मातृकाणामत्र परिचयो दीयते—

१. **मातृका 'क'** :—इयं मातृका लखनऊ-विश्वविद्यालयस्य टैगोर-पुस्तकालये पाण्डुलिपि-ग्रन्थागारे समुपलभ्यते । सुस्पष्टाक्षरैर्लिखितेयं पूर्णा मातृकाऽस्ति । अस्यां मातृकायां पञ्च पत्राणि सन्ति । अस्याः पुष्पिकायां लिखितमिदं प्राप्यते—"काश्यां वल्लभभट्टस्य पुत्रेण निरमाय्यसौ । निर्मला त्रिमलाख्येन रम्याऽलङ्कारमञ्जरी ॥४१॥ इति श्रीत्रिमल्लभट्टविरचिताऽलङ्कारमञ्जरी समाप्ता ॥ मासे तपस्येऽसितपञ्चदश्यां वरे भृगो रामपदप्रपन्नः ॥ भूभृत्कृशान्वष्ट १८३७ शशाङ्कसङ्ख्ये वर्षे वृषाधीशकृतप्रणामः ॥१॥ अलिखन्मंजरीं दिव्यामलङ्कारावबोधिकाम् ॥ यया कण्ठस्थया ज्ञानं शिशूनां सञ्चरेन्मनः ॥"

अस्या मातृकाया लिपिकालः १८३७ वैक्रमसंवत्सरो वर्तते ।

२. **मातृका 'ख'** :—मातृकेयं अष्टपत्रात्मिका भण्डारकर-प्राच्यशोध-संस्थानस्थहस्तलिखितग्रन्थागारे पुण्य-पत्तने सुरक्षिताऽस्ति । इयमपि स्पष्टस्थूलाक्षरैर्लिखिता पूर्णा मातृका वर्तते । अस्या लिपिकालः १९०९ विक्रमसंवत्सरोऽस्तीति पुष्पिकायां समुल्लिखितम्--"काश्यां वल्लभभट्टस्य पुत्रेण निरमाय्यसौ । निर्मिता त्रिमल्लाख्येन रम्याऽलंकारमंजरी ॥४४॥ इत्यर्थालंकारमंजरी समाप्ता ॥ सं० १९०९ आश्विनकृष्णः १ लि० चि० रत्नलालेन अलंकारानुक्रमे श्लोकसङ्ख्या"--

१.	स्वभावोक्तिः	३	९.	विशेषोक्तिः	११
२.	उपमा	४	१०.	सहोक्तिः	१२
३.	रूपकं	५	११.	व्यतिरेकः	१३
४.	दीपकं	६	१२.	विभावना	१४
५.	अतिशयोक्तिः	७	१३.	आक्षेपः	१५
६.	समासोक्तिः	८	१४.	उत्प्रेक्षा	१७
७.	वक्रोक्तिः	९	१५.	उदात्तः	१८
८.	पर्यायोक्तिः	१०	१६.	अप्रस्तुति:	१९

इत्यनुक्रमणी

३. मातृका 'ग' :—इयं मातृका पुण्यपत्तनस्थभण्डारकरप्राच्यशोध-संस्थाने हस्तलिखितग्रन्थागारे सुरक्षिता वर्तते। इयं त्रिपत्रात्मिका मातृका पूर्णाऽस्ति। अस्या लिपिकालोऽत्र न लिखितो वर्तते पुष्पिकायामस्या लिखितम्—"काश्यां वल्लभभट्टस्य पुत्रेण निरमाय्यसौ। निर्मला त्रिमलाख्येन रम्यालङ्कार-मंजरी ॥४१॥ इति अलंकारमंजरी समाप्ता ॥श्री॥ अत्रालंकाराः स्वभावोक्तिः, उपमा, दीपकं, अतिशयोक्तिः, समासोक्तिः, वक्रोक्तिः, पर्यायोक्तिः, विशेषोक्तिः, सहोक्तिः, व्यतिरेकः, विभावना, आक्षेपः, उत्प्रेक्षा, उदात्तं, अपह्नुतिः, श्लेषः, अर्थान्तरन्यासः, आवृत्तिः, व्याजस्तुतिः, निदर्शनं, अप्रस्तुतप्रशंसा, परिवृत्तिः, विरोधः हेतुः, सूक्ष्मं, रसवत्, ऊर्जस्वी, प्रेयः, क्रमः, समाहितं, तुल्ययोगिता, लेशः, संशयः, अनन्वयः, उपमेयोपमा, संकीर्णं, भाविकं, आशिषं चेति मुख्यालंकाराः अन्ये इतरे-तरभेदा भवंति ते क्रमाल्लिखिताः ॥श्री॥ ॥श्री॥ ॥श्री॥"

अलङ्कारमञ्जरीकर्तुः परिचयः कालश्च

'अलङ्कारमञ्जरी'-ग्रन्थस्य रचयिता त्रिमल्लभट्ट इति नाम्ना प्रसिद्धोऽस्ति। कतिपयासु पाण्डुलिपिषु नामाऽस्य 'त्रिम्मल' 'तिर्मल' वेति प्राप्यते। कदाचिदेतस्मादेव कारणाद् एस० के० डे–महोदयेन स्वीकृतं यदयं त्रिमल्लभट्टो दाक्षिणात्य आसीत्। तेनैवाऽस्य पितामहस्य नाम सिंहनभट्ट इति

लिखितं येनाऽऽयुर्वेदेऽपि किमपि कार्यं विहितम् ।[1] त्रिमल्लभट्टस्य पितुर्नाम 'वल्लभभट्ट' इत्यासीद्, यथोक्तमलङ्कारमञ्जर्यामेव—

काश्यां वल्लभभट्टस्य पुत्रेण निरमाय्यसौ ।
निर्मला त्रिमल्लाख्येन रम्याऽलङ्कारमञ्जरी ॥[2]

अनेन श्लोकेनेदमपि ज्ञायते यदयं काश्यां निवसति स्म । किन्तु एस० के० डे-महोदयेन लिखितं यदनेनाऽलङ्कारमञ्जरी वाराणस्यां रचिता, नाऽस्य जन्मस्थली वाराणस्यासीत् । एतस्मिन् सन्दर्भे मम विचारोऽस्ति यदयं त्रिमल्लभट्टः काश्यां न केवलमलङ्कारमञ्जरीं प्रणिनायाऽपितु काश्या एव मूलनिवास्यप्यासीत् । यतो हि ग्रन्थेऽस्मिन् यान्युदाहरणानि दत्तानि तेष्वदाहरणेषु गङ्गाकालिन्दीशिवगणेशाम्बादीनामुत्तरभारतीयविषयाणामेव प्रायो वर्णनं वर्तते, नात्र दक्षिणभारतीयानां नद्यादीनां नामाप्युल्लिखितम् । तथा चाऽलङ्कार-मञ्जरीग्रन्थस्य पाण्डुलिपय उत्तरभारत एव बहुधा प्राप्यन्ते । एतैः प्रमाणैः काश्यामेव मूलनिवासोऽस्य सिद्धो भवति ।

अस्य कवेः कालस्य विषये पी० वी० काणे-महोदयेन लिखितं यद् वल्लभभट्टस्य पुत्रेण त्रिमल्लभट्टेन स्वोपज्ञायां योगतरङ्गिण्यां वीरसिंहावलोकः समुदाहृतः । एतस्मादस्य कालः १३८३ खिस्ताब्दतः १४६६ खिस्ताब्दमध्ये निर्धारितः ।[3] एस० के० डे-महोदयस्यैतदेव मतमस्य कालविषये वरीवर्त्ति ।[4] एतदतिरिक्तमेकाऽपराऽलङ्कारमञ्जरी प्राप्यते, यस्या रचयिता बेणीदत्तः कथ्यते । अनेन 'रसकौस्तुभ'-नाम ग्रन्थोऽपि लिखितः । वेणीदत्तकृताऽलङ्कार-मञ्जरी[5] प्रकाशिता वर्तते । अस्य वेणीदत्तस्य समय एकादशशताब्दीतो द्वादश-

१. History of Sanskrit Poetics, S. K. De, P. 281, Vol. I.
२. अलङ्कारमञ्जर्याम्, श्लोकः ४३
३. "अलङ्कारमञ्जरी अथवा अर्थालङ्कारमञ्जरी—ले० वल्लभभट्ट के पुत्र त्रिमल्लभट्ट स्वोपज्ञ योगतरङ्गिणी में वे वीरसिंहावलोक को उदाहृत करते हैं । (समय—१३८३—१४६६ ई० के बीच), देखो—बुक्स आफ बाम्बे रायल एशियाटिक सोसायटी हस्तलेख-सूची, पृष्ठ ४२ ॥"
—(संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास (पी० वी० काणे), पृ० ४६०)
४. History of Sanskrit Poetics, S. K. De, P. 281, Vol. I,
५. अलङ्कारमञ्जरी—वेणीदत्तकृता, सम्पादकः—कविशेखर बदरीनाथ झा, प्रकाशक—मिथिला संस्थानं दरभङ्गा ॥

शताब्दिमध्ये मन्यते[1]। श्रीवेणीदत्तोऽलङ्कारमञ्जर्यां मङ्गलाचरणं कुर्वन् कथयति—

दारितदुरितकदम्बोरोलम्बोल्लसितमौलिना ललितः।
कल्याणं सुचिरं वो रुचिरं लम्बोदरः कुरुताम्॥[2]

त्रिमल्लभट्टेनापि लिखितमलङ्कारमञ्जर्याम्—

कपोललम्बिलोलम्बविम्बकोलाहलाकुलम्॥
अम्बालम्बानुरागाढ्यं लम्बे लम्बोदराननम्॥[3]

वेणीदत्तो लिखति—

श्रीगोविन्दपदद्वन्द्वकञ्जरञ्जनकारिणी।
वेणीदत्तेन कृतिना कृताऽलङ्कारमञ्जरी॥[4]

त्रिमल्लभट्टेनाऽलेखि—

काश्यां वल्लभभट्टस्य पुत्रेण निरमाय्यसौ।
निर्मला त्रिमल्लाख्येन रम्याऽलङ्कारमञ्जरी॥[5]

वेणीदत्तस्याऽलङ्कारमञ्जर्यां २४१ श्लोका दरीदृश्यन्ते। यदि पूर्वोक्तसमयः (एकादशशताब्दीतो द्वादशशताब्दिपर्यन्तम्) स्वीक्रियते तर्हि अवश्यमेव त्रिमल्लभट्टस्तत्परवर्ती भवितुमर्हति। उभयोर्मङ्गलाचरणयोरभेदत्वात् त्रिमल्लभट्टः श्रीवेणीदत्तरचितामलङ्कारमञ्जरीं दृष्ट्वाऽपरामेकामलङ्कारमञ्जरीं प्रणिनाय। अत एवाऽस्य त्रिमल्लभट्टस्य कालः पी० वी० काणेमहोदयानुसारं त्रयोदशतश्चतुर्दशखिस्ताब्दमध्य एव तिष्ठति।

अलङ्कारमञ्जरीवाङ्मयं प्रतिपाद्यविषयश्च

संस्कृतवाङ्मयेऽलङ्कारमञ्जरीनामधेयाः पञ्च ग्रन्थाः समुल्लिखिताः प्राप्यन्ते। तद्यथा—

---

१. वेणीदत्तकृताऽलङ्कारमञ्जर्याम्, उपन्यासे, पृ० १
२. तत्रैव, श्लोकः – १
३. त्रिमल्लभट्टकृताऽलङ्कारमञ्जर्याम्, श्लोकः १
४. वेणीदत्तकृताऽलङ्कारमञ्जर्याम्, श्लोकः २
५. त्रिमल्लभट्टकृताऽलङ्कारमञ्जर्याम्, श्लोकः ४२

(i) **रुय्यकराजानककृताऽलङ्कारमञ्जरी** :—राजानकरुय्यकेण स्वकीयेऽलङ्कारसर्वस्वेऽलङ्कारमञ्जरी काचन व्यलेखि, किन्तु नैतत् स्पष्ट्यते यदियं राजानकरुय्यकस्यैव रचनाऽस्ति वाऽपरस्य कस्यचिदिति । अस्य ग्रन्थस्य काचित्सूचना जयरथेन न विमर्शिणीटीकायां कथिता ।[२] न चेयं मातृकारूपत्वेन हस्तलिखितग्रन्थागारेषु विद्यते । इयं लुप्तप्रायाऽलङ्कारमञ्जरीति नाऽद्यावधि क्वचित्समुपलभ्यते ।

(ii) **सुखलालकृताऽलङ्कारमञ्जरी** :—सुखलालेनाऽस्या अलङ्कारमञ्जर्याः प्रणयनं कृतम् । नाऽयं कश्चिन्मौलिकग्रन्थोऽपितु पीयूषवर्षिजयदेवकृतस्य चन्द्रालोकस्यानुसारमियमलङ्कारमञ्जरी प्रणीता वर्तते ।[३] नाऽयं ग्रन्थोऽद्यावधि प्रकाशितः ।

(iii) **सुधीन्द्रयतिकृताऽलङ्कारमञ्जरी** :—विजयीन्द्रयतेः (१६२३ खिस्ताब्दः) शिष्यः सुधीन्द्रयतिरिमामलङ्कारमञ्जरीं रचयामास । इयमप्रकाशिता सरस्वती-महलपुस्तकालये तञ्जौर-नगरे च सुरक्षिता वर्तते । अस्या 'मधुधारा' नाम्नी टीकाऽपि प्राप्यते, या सुधीन्द्रयतिनैव प्रणीताऽस्ति ।[४]

(iv) **वेणीदत्तकृताऽलङ्कारमञ्जरी** :—एषाऽलङ्कारमञ्जरी प्रकाशिता वर्तते । कविशेखरो बदरीनाथझामहोदय एतामलङ्कारमञ्जरीं सर्वप्रथमं सुसम्पाद्य मिथिलासंस्थानदरभङ्गातः १९६१ खिस्ताब्दे प्राकाशयत् ।[५] अस्यामनुष्टुब्छन्दोभिरलङ्काराणां लक्षणानि, अन्यश्लोकैश्चोदाहरणानि प्राचीकटद् वेणीदत्तः । सर्वेषामत्र लक्षणोदाहरणानां सङ्ख्या २४१ वर्तते । वेणीदत्तो 'रसकौस्तुभ'-नाम ग्रन्थमपि रचितवान् । अस्य समय एकादशतो द्वादशशताब्दिमध्ये मन्यते ।[६] अस्या अलङ्कारमञ्जर्या अन्तिमं श्लोकद्वयमित्थं प्रकल्पितम्—

लावण्यामृतजलधौ मुखशशिनौ मज्जतः सुदृशः ।
वेणी धौतकलङ्कश्रेणीत्यवधारितं विदुषा ॥

---

१. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० १५–"तत्र रसादिध्वनिरलङ्कारमञ्जर्यां दर्शितः।"
२. द्रष्टव्यमलङ्कारसर्वस्वम्, पृ० १५, विमर्शिणीटीकायाम् ।
See —(Index of Authors and Works—History of Sanskirt Poetics, P. 401, by P. V. Kane)
३. History of Sanskrit Poetics, P. 401,
४. Tanjore S. M. MSS Catalogue Vol II, PP. 3971-73.
५. वेणीदत्तकृताऽलङ्कारमञ्जर्याम्, उपन्यासे पृ० १.

वेणीदत्तकवेः क्लृप्ता दीप्ताऽलङ्कारमञ्जरी ।
इयमास्तां चिरं विद्वच्चञ्चरीकप्रमोदिनी ।।[1]

(v) **त्रिमल्लभट्टकृताऽलङ्कारमञ्जरी :** अस्या अलङ्कारमञ्जर्या विवरणं संक्षेपेण एस० के० डे-महोदयेन पी०वी० काणे-महोदयेन च समुल्लिखितम् ।[2] अस्मिन् ग्रन्थेऽलङ्काराणां लक्षणानि सूत्रत्वेन निरूपितानि । कतिपयानामलङ्काराणां वर्णने श्रीत्रिमल्लभट्टस्य मौलिकता दरीदृश्यते । अलङ्काराणामत्रत्योदाहरणेषु सर्वेषु शृङ्गाररसो नरीनृतीति । लघुकायग्रन्थेऽस्मिंस्त्रिचत्वारिंशच्छ्लोका उपलभ्यन्ते । अत्रालङ्काराणां ज्ञानमल्पायासेनैव भवितुं शक्यते, यतो ह्युक्तमाचार्येण—

ज्ञातुमिच्छन्त्यलङ्कारानल्पेन श्रवणेन ये ।
कुर्वन्तु कर्णयोरुच्चैः कर्णालङ्कारमञ्जरीम् ।।[3]

अस्यामलङ्कारमञ्जर्यामिकोनचत्वारिंशदलङ्काराश्चर्चिताः सन्ति । एष्वलङ्कारेषु रसवदूर्जस्विप्रेयःसमाहितनामधेया अप्यलङ्कारा वर्णिताः 'अत्रालङ्काराणां भेदोपभेदकथनं न विहितमपितु मुख्यालङ्कारलक्षणानि सूत्ररूपत्वेन निगदितानि ततस्तेषामुदाहरणपद्यानि चोक्तानि वर्तन्ते । अस्य ग्रन्थस्योपरि पूर्ववर्तिनामाचार्याणां भामहरुद्रटवामनरुय्यकादीनां प्रभावो नितरां दृश्यते । मुख्यालङ्काराणां वर्णनं कृत्वा त्रिमल्लभट्टोऽब्रवीद् यदन्येऽलङ्कारा वैकल्पिका एतेभ्य एव जायन्ते—

अथालङ्कारजातं हि मुख्यमेतावदेव हि ।
अन्ये वैकल्पिकाः सर्वे विज्ञेया किल तद्भवाः ।।[4]

अस्या अलङ्कारमञ्जर्या उदाहरणानि नान्यग्रन्थेभ्य आहृतानि, अपितु कविप्रवरेण त्रिमल्लभट्टेन स्वयं रचितानि वर्तन्ते । संक्षिप्तेयमलङ्कारमञ्जरी रसगङ्गाधरादिवन्न प्रचुरपरिष्कारभू, न चाऽलङ्काराणां प्रकारभूयस्त्वकरी कुवलयानन्दग्रन्थादिवत्, न वा काव्यप्रकाशवन्निगूढशब्दार्थनिधिः, किन्तु विषमतमेऽलङ्कारलतापादपे समारुरुक्षूणां पुष्पिता मञ्जरीवाऽलङ्कारमञ्जरीयं

---

१. वेणीदत्तकृताऽलङ्कारमञ्जर्याम्, श्लोकः २४०-२४१
२. History of Sanskrit Poetics, Vol I, S. K. De, P. 281,
संस्कृतकाव्य-शास्त्र का इतिहास—पी०वी० काणे, पृ० ४६०
३. त्रिमल्लभट्टकृताऽलङ्कारमञ्जर्याम्, श्लोकः २
४. तत्रैव, श्लोकः ४२

तावत्परमामुपकृतिं फलिष्यतीति कृत्वा तिसृभिर्मातृकाभिः सुसम्पाद्य प्रथमतया प्रस्तूयते विद्वज्जनप्रमोदाय ।

एतदलङ्कारमञ्जरीमकरन्दं पिबन्तीं कामपि टीकामदृष्ट्वा विद्वच्चरण-रागिणीं मञ्जरीमकरन्दहारिणीं 'भ्रमरी'-नामधेयां टीकां वितन्य काव्यदेवतां स्तौमीति शम् ।

—०—

श्रीत्रिमल्लभट्टविरचिता

अलङ्कारमञ्जरी

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

कपोललम्बिलोलम्ब[1] —विम्बकोलाहलाकुलम् ।
अम्बालम्बानुरागाढ्यं[2] लम्बे लम्बोदराननम् ॥१॥
ज्ञातुमिच्छन्त्यलङ्कारानल्पेन श्रवणेन ये ।
कुर्वन्तु कर्णयोरुच्चैः[3] कर्णालङ्कारमञ्जरीम् ॥२॥*

स्वभावोक्त्युपमारूपकदीपकातिशयोक्तिसमासोक्तिवक्रोक्तिसहोक्तिपर्यायोक्तविशेषोक्ति[4] - व्यतिरेकविभावनाऽऽक्षेपोत्प्रेक्षोदात्ताऽपह्नुतिश्लेषाऽर्थान्तरन्यासावृत्ति - व्याजस्तुतिनिदर्शनाऽप्रस्तुतप्रशंसा-परिवृत्ति - विरोध[5]-हेतुसूक्ष्मरसवदूर्जस्विप्रेयः[6]-क्रमसमाहित-तुल्ययोगिता-लेशसंशयाऽनन्वयोपमेयोपमासंङ्कीर्ण[7] - भाविका[8]ऽऽशिषो मुख्यालङ्काराः । इतरे[9] तद्भेदास्ते क्रमेणोदाह्रियन्ते ।+

(१) **स्वभावकथनं स्वभावोक्तिः ।**

यथा

लोलत्कुन्तलवारिविन्दु[10]-विगलच्छ्रीखण्डविन्दुस्फुरद्—
वक्त्रेन्दुस्फुरदक्षि[11]-शोणिमलसच्चैलाञ्चलान्दोलिनी ।[12]
श्लिष्ट[13]स्निग्ध-निचोलदर्शितकुचं नम्रीकृतास्यं शनैः[14]
कालिन्दीजलतः प्रयाति पुलिनं शातोदरी[15] राधिका ॥३॥

---

१ रोलम्ब-ख, २. रागाढ्याऽऽलंबे-ख, ३. रुच्चैरर्थालंकार-क, ४. सहोक्ति-क, ५ विरोधि-क, ६. प्रायः-क, ७. शंकीर्ण-ख, ८. स्वाभाविका-क, ९. इतरेतर-क, १०. विदलत्-क, विगतः-ख, ११. स्फुरदक्ष-क, स्फुटदक्षिश्रोणिम-ग, १२. चलान्दोलिमा-क, ख, १३. श्लिष्यत्-क, १४. कृताशं शनैः-क, कृतास्यं समैः-ग,

* 'ग' मातृकायां श्लोकौ न प्राप्येते । तत्र 'श्रीगणेशाय नमः ॥ अलंकारमञ्जरीप्रारम्भः स्वभावोक्तिर्यथा' इत्येवोपलभ्यते । स्वभावोक्तिलक्षणमपि नास्ति ।

+ 'ग' मातृकायां समासतो मुख्यैवालंकाराणां प्राप्यते ।

(२) **किमप्येकदेशसाम्य[1]मवलम्ब्य यत्र न्यूनगुणोऽधिकगुणस्य साम्य[2]मानीयते सोपमा[3]** । यथा—

पयोधरभराक्रान्ता राधा माधवलम्बिनी[4] ।
विभाति स्तबकानम्रा लतेव तरुसङ्गिनी ॥ ४ ॥

(३) **सा इ[5]वादिभेदरहितोपमा रूपकम्** । यथा—

मुखं तुहिन[6]दीधितिर्नयनयुग्ममि[7]न्दीवरम्
वचोऽमृतपरम्परा हसिमैन्दवी दीधितिः ॥
भ्रुवौ मदनकार्मुके करिकिशोरकुम्भौ कुचौ
यदीयमिदमद्भुतं जयति सा जगन्मोहिनी ॥ ५ ॥

(४) **आदिमध्यान्तस्थानभेदादेकैव क्रिया[8] यत्र सर्ववाक्यार्थमुद्दीपयति तद्दीपकम्** । यथा—

पीयन्ते मधुपैर्मधून्यधिसरःपङ्केरुहाङ्केषु च
स्विद्यद्गण्डमखण्डपङ्कजदृशां बिम्बाधराः[9] कामिभिः ।
कर्णैः कोकिलकाकलीकलरवा यूनाम[10]नूनात्मनाम्
दृग्भि[11]र्भीतकुरङ्गशावकदृशां प्राणेशवक्त्रेन्दवः[12] ॥ ६ ॥

(५) **विशिष्टार्थविवक्षया लोकसीमो[13]ल्लङ्घिनी क्रियाऽतिशयोक्तिः** । यथा—

माला नीलाम्बुजदलकृता कण्ठनालावसक्ता
कर्णद्वन्द्वे मलिननलिनं[14] नेत्रयोरञ्जनानि ।
नीलं वासो मृगमदरसैरङ्गरागोऽप्यनङ्गो
नाऽभूदग्रेसर इति तदा सा कथं नाथमीयात् ॥ ७ ॥

(६) **किञ्चिद्वस्तूपलक्ष्य तत्समानवस्तुवर्णनं समासोक्तिः** । यथा—अत्र स्वीयां कामिनीं प्रविहाय तत्समयेऽन्यनायिकां प्रति गन्तारं दूतीवचनम्[15]—

---

१. मामान्यम्-क, २. सामान्यम्-क, ३. सोपमाल०-ग, ४. सङ्गिनी-क, ५. इवादिभेदरहितो-ख, ग, ६. तुहीना-ख, ७. मिंदिवर-ख, ८. क्रियया-क, ९. धरः-क, १०. यूनापनूना-ख, ११. दृष्टिर्-ग, १२. वक्त्रेन्दुना-ग, १३. शीमो-ख, १४. नयने-क, १५. इयं पङ्क्तिः 'ख' ,ग' मातृकयोर्नोपलभ्यते ।

वरमिह कौन्दे[1] कुसुमे तनुरपि मकरन्द[2]विन्दुरलिनाथ ।
नो याहि[3] तत्र नक्तं [4]कमले सुलभा न [5]मकरन्दाः ॥ ८ ॥

(७) सादृश्यलक्षणा[6] वक्रोक्तिः : यथा—

वहति गगन[7]गङ्गा तुङ्गकादम्बयुग्मे[8]
गिलति तुहिनभानोर्मण्डलीमन्धकारः ।
वमति तरलतारा चारुधारामपि द्रा—
गहह मकरकेतोः सृष्टिरन्याऽतिधन्या[9] ॥ ९ ॥

(८) इष्टार्थमनुक्त्वैव तत्कृते प्रकारा[10]न्तरकथनं पर्यायोक्तिः । यथा—

मनोजतरुमञ्जरी चकितखञ्जरीटे[11]क्षणा
निकुञ्जगृह[12]मञ्जसा यदुपते[13] ! गतैवाऽधुना ।
व्रज त्वमपि सुन्दर[14] ! त्वरितमार्य[15] ! तत्रैव हे !
मयाऽपि न नि[16]वार्यते पिककपोतकोलाहलः ॥ १० ॥

(९) गुणजातिक्रिया[17]भेदाद् वैकल्प्यदर्शनं विशेषोक्तिः । यथा—

नायं मनसिजवाणो नूत[18]नचूतस्य मञ्जरी नापि ।
तदपि व्यथयति[19] चेतश्चञ्चलनयनाकटाक्षविक्षेपः[20] ॥११॥

(१०) भावैः सहाख्यानं सहोक्तिः । यथा—

उदेति तुहिनद्युतिः सह ममाभितापैरलं
भृशं वहति मारुतो नयनवारिपूरैः[21] सह ।
पिकः[22] कलकलध्वनिं सह तनोति कर्ण[23]ज्वरै—
र्निशापि सह वर्तते विषममूर्च्छ[24]या तुच्छ[25]या ॥ १२ ॥

---

१. वरमिह कुसुमे-ख, २. मकरन्दजोविन्दुः-क, मकरन्दस्यैकविन्दुर्-ख, ३. नो त्वं याहि-क, नो यात-ग, ४. न कमले-क, ५. सुलभा नकरन्दाः-क, सुलभो न मकरन्दः-ग, ६. लक्षणं-क, ७. गमन-ख, ८. युग्मं-क, ग, ९. धन्याः-ख, १०. प्रकारान्तरे-ख, ११. रेक्षणा-ख, १२. ग्रह-ख, १३. यदिततो-ख, यदुपतिर्-ग, १४. सुन्दरि ख, ग, १५. त्वरितमङ्ग-ख, ग, १६. ननु वार्यते-क, १७. क्रियायोगाद्-ग, १८. नूनं-क, १९. प्रथयति-ख, २०. विक्षेपैः-ग । २१. पूरैस्सह-क, २२. पिकी-क, ग, २३. कर्णज्वज्वरैः-क, २४. मूर्छया-क, ख, ग, २५. तुछया-ग,

(११) **सादृश्यप्राप्तवस्तुद्व[1]यस्य भेदकथनं व्यतिरेकः ।** यथा—

स[2]त्यमिन्दीवरदृशा[3] तुल्या कनकवल्ल[4]री ।
नताङ्गी फलभारेण किन्त्वसौ गतचेतना ।। १३ ।।

(१२) **प्रसिद्ध[5]कारण[6]निरासाद् यत्र स्वभावकारणं विभाव्यते सा विभावना ।** यथा—

अरुणमरञ्जितमधरतलं
नयनमनञ्जि[7]तमसितरुचि ।
सुरभिविना मधु वदनमलं
मद[8]नतरङ्गिणि[9] तव रुचिरम् ।। १४ ।।

(१३) **उक्तिनिषेधोक्तिराक्षेपः ।** यथा—

वारिणि[10] तरणिसुताया बल्लवयोषा[11]ऽतिपल्ल[12]वावयवैः ।
हरिरपि नीतो वश[13]तां शिव शिव विषयोऽतिदुर्जयो जगति[14] ।। १५ ।।

(१४) **अन्यथास्थितवृत्तेरन्यथोत्प्रेक्ष्य[15] वर्णनमुत्प्रेक्षा ।**

म[16]न्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः ।
उत्प्रेक्षा व्यञ्ज्यते शब्दैरिव[17] शब्दोऽपि तादृशः ।।*

यथा—

शङ्के कुरङ्गनयनानयनान्तपाताः,
सन्तीह मोहनतरोः कुसुमानि सत्यम् ।
नोचेदनङ्गदहनो वहतीन्दुचूडः[18],
शै[19]लाधिराजतनयामधुनापि[20] कस्मात् ।। १६ ।।

(१५) **आश्रयस्य[21]सम्पदो वा महत्त्ववर्णनमुदात्तम्[22] ।** यथा—

---

१. वस्तुभेद-ग, २. सत्वमि-क, ३. दृशस्तुल्या-क, ख, ४. मञ्जरी-क, ग, ५. सिद्ध-ग, ६. कारणन्निरसाद्यत्र-क, ७. नयनम रञ्जित-ख, ८. काम-क, ९. तरङ्गिणी-ख, १०. वारिणी-ख, ११. वेषो-ग, १२. वल्लभावयवैः- ख, १३. वसतां-क, ख, १४. जयति-ख, ग, १५. रन्योत्प्रेक्षा-क, ख, १६. अन्ये-क, १७. रिहशब्दोऽपि-क १८. वहतीह चंडः-ग, १९. लेशाधिराज-ख, २०. धुनाप्यकस्मात्-ग, २१. अश्रयस्य-क, अथाशयसंपदो-ख, आशयस्य-ग, २२. मुदात्तः-ख,

* इयं कारिका 'ग' मातृकायां नोपलभ्यते । 'क' मातृकायां चोत्प्रेक्षालङ्कार-लक्षणात्प्रागेव कारिकेयं विद्यते ।

स्फ[1]टिकघटितका[2]न्तस्तम्भ[3]शालान्तराले[4]
प्रतिफ[5]लति तनुश्रीः कोटिशः स्पष्टमेव ॥
वद[6]नतुहिनरोचिः खञ्जरीटेक्षणाया—
श्चिरमवक[7]लितोऽभूत्पश्यतो[8] माधवस्य ॥ १७ ॥

(१६) स्वाभिप्रायं सङ्गोप्या[9]ऽर्थदर्शनमपह्नुतिः । यथा—

उच्चैः कोकिलकाकलीकलकलः कालस्य ढक्का[10]रवः
चन्द्रश्चन्दनचारु[11]विन्दुविशदः[12] कन्दश्च[13] हालाहलिः ॥
कुन्दः कुन्दमनोज्ञदन्ति सखि हे ! पञ्चेषुबाणः स्फुटं
सत्यं मे पुनरेतदेव सकलं सौख्याय चान्या[14]न्प्रति ॥ १८ ॥

(१७) अनेकार्थमन्वययोग्यं पदं श्लेषः । यथा—

सालङ्कारा सुवर्णा च सु[15]रूपा सुगुणान्विता ।
को वेद कस्य धन्यस्य कवितावनितालता[16] ॥ १९ ॥*

(१८) उक्तार्थस्या[17]ऽर्थान्तरेण दृ[18]ढीकरणमर्थान्तरन्यासः । यथा—

मृगनयने तव[19] नयनं चुम्बितकर्णं मनो ह[20]रति ।
स्व[21]च्छोऽपि कुटिलसङ्गाद् भवति हि पुंसां विकाराय ॥ २० ॥

(१९) पदपदार्थवृत्तितदुभयावृत्तिभेदादावृत्तिः[22] । यथा—

अञ्चति लोचनयुगलं चञ्चलमृगलोचना[23]ञ्जनैरबला ।
अञ्चति कुसुमधनुः स्वं धनुरपि पौष्पेण[24] बाणेन ॥ २१ ॥

(२०) यत्र निन्दाव्याजेन स्तुतिः क्रियते सा व्याज[25]स्तुतिः । यथा—

---

१. फटिक-क, २. रम्य-क, ३. स्तम्ब्र-ग, ४. राला-क, राल-ग, ५. प्रतिफलित-ग, ६. दहन-क, ७. मवफलितो-क, ८. पश्यतो मानवत्याः-ख, यं विन्दुभृत्पश्यतो माम्-ग, ९. संगोप्यान्यर्थदर्शन-ग, १०. हंकारवः-क, हक्कारवः-ग, ११. बिन्दुविन्दु-ग, १२. विषदो-क, १३. वन्दश्च हालाहलः-क, कान्यश्च कालोहलिः-ख, १४. नान्यान्-ख, १५. वसुरूपा-क, च स्वरूपा-ख, १६. वणिता इव-क, १७. उक्तार्थान्तरेण-क, १८. दृष्टीकरण-ग । १९. न च नयनम्-ख, २०. हन्ति-क, २१. स्वछोऽपि-क, स्वछोपि-ख, ग, २२. पदपदार्थवृत्तितदुभयवृत्तिभेदावृत्तिः-क, पदपदार्थावृत्तिभेदादावृत्तिः-ख, २३. लोचनीजनै-ग, २४. पुष्पेन-ग, २५. सा व्याजः स्तुतिः ख,
* 'ग'-मातृकायां श्लेपालङ्कारस्योदाहरणं लक्षणञ्च न प्राप्येते ।

इषुभिः पञ्चभिः पञ्चशरेण जगती जिता ।
एकेन नयना[1]न्तेन त्वयापि च मदैरलम् ॥ २२ ॥

(२१) अन्[2]यार्थप्रवृत्तेन वाक्येन यत्र[3] तत्सदृशफलं दृश्यते तन्निदर्शनम् । यथा—

प्राणानाह्लादयत्येष दाक्षिणात्यः प्रकम्पनः ।
आत्मीयसम्पदां तन्वि[4] ! फलं सुहृदनुग्रहः ॥ २३ ॥

(२२) अप्रस्तुतस्य[5] प्रशंसनमप्रस्तुतप्रशंसा । यथा—विरहिणीवचः—*

धन्या कुरङ्गरमणी रमणीय[6]निकुञ्जचारिणी सखि हे !
क्षणमपि लोचनपथतः शिव[7]! शिव ! नो याति वल्लभो यस्याः[8] ॥२४॥

(२३) अर्थानां परावर्तनं[9] परिवृत्तिः । यथा—

ददाति हारकेयूरकङ्कणं हरिणीदृशे[10] ।
गृह्णाति च ततः[11] कान्तश्चुम्बनाश्लेषभाषणम् ॥ २५ ॥

(२४) विशिष्ट[12]दर्शनाय विरुद्धा[13]चरणं पदार्थानां यत्र संसर्गदर्शनं स विरोधः । यथा—

मलयगिरितटीपटीरवाटीपरिचय[14]पीनसुगन्धिरेति वायुः ।
उदयति तरुणी[15]मनोऽन्तराले सममसमा[16]प्रलयानलाभिशङ्का ॥ २६ ॥

(२५) [17]सहेतुवर्णनं हेतुः[18] । यथा—

आधूय स्फुटितवनानि पङ्कजाना—
मास्वाद्य[19] स्मितविशदानि पुष्कराणि ॥
आलिङ्ग्य स्तवकलतालवङ्गवल्ली—
रायातः सखि ! मम हिंसनाय वायुः ॥ २७ ॥

---

१. नयानान्तेन-क, नयनीतेन-ग, २. अन्यथाप्रवृत्तेन-क, अन्यप्रवृत्तेन-ख, ३. यत्तत्सदृशं-ख, ४. तन्वी-ख, ५. आसामैकप्राप्तस्य प्रसंशने प्रस्तुत-प्रशंसा-क, अप्रस्तुत-प्रससनम्-ख, अप्रस्तुतस्य प्रशमनमप्रस्तुतप्रशंसा-ग, ६. रमणैः सहचारिणी-ख, रमणीयनिकुञ्जचारमणि-ग, ७. शिवशि नो-क, ८. वल्लभोऽस्याः-क, ९. परिवर्तनम्-ग, १०. दृशा-ग, ११. सद्यश्च तत्-ग, १२. विशिष्टदर्शनया-क, १३. विरुद्धानांपदार्थानां-क, ग १४. परिवय-क, परिचित-ख, १५. तरुणि-ख, १६. समपप्रलयानालाभि-क, सम-समा पलयानलाभिशङ्का-ग, १७. स्वहेतु-क, १८. ग' मातृकायां हेत्वलङ्कारस्य लक्षणं नास्ति । १९. मासाद्य-क ।

* इदं कथनं ख' ग' मातृकयोर्नोपलभ्यते ।

(२६) **इङ्गिताकारलक्ष्योऽर्थः[1] सूक्ष्मः । यथा—**

राधा मनसिजबा[2]धाखिन्नमनस्कं समालोक्य ।
शौरिं[3] सदसि गुरूणां दर्पणबिम्बं विभावयति ॥ २८ ॥

(२७) **रसपेशलं[4] रसवत् । यथा—**

पूर्वं यज्ञशतं[5] कृतं किमथवा गोकोटिदानं कृतं
किं वा बालशशाङ्कशेखरपद[6]द्वन्द्वे कृतं मानसम् ।
नो चेद् बालविहस्त[7]रङ्कुरमणीनेत्रारविन्दा कथं[8]
बाला बालसरोज[9]सुन्दरमुखी सस्मेरमालिङ्गिता ॥ २९ ॥

(२८) **साहङ्कारकथनमूर्जस्वी[10] । यथा—**

रिङ्ग[11]त्तुङ्गतुरङ्गटापविदलत्क्षो[12]णीतलप्रोल्ल[13]सद्
धूलीधूसरवैरि[14]वीरकदलीकान्[15]तारकुन्दांकु[16]रान् ।
क्रोधाक्रान्तमतङ्गपुङ्गव इव स्विद्यत्करेणोच्चकै[17]—
रु[18]त्खायाशु कुरंगशावनयने ! प्रेक्ष[19]यामि मुञ्चाञ्चलम् ॥३०॥

(२९) **प्रियकथनं प्रेयः[20] । यथा —**

सार्था नेत्रविशा[21]लताऽद्य भवतो वक्त्राम्[22]बुजं पायि[23]नी
सार्थं पाणिमृदुत्वमंग ! भवतः[24] सेवासु य[25]ल्लोलुपम् ।
सार्थं नाथ ! वपुस्त्वदीयनयनद्वन्द्वस्य केलीगृ[26]हं
भूयः किं बहुनाऽहम[27]द्य सक[28]ला सार्था कृतार्था त्वया ॥३१॥

(३०) **उपमानोपमेययोः क्रमवर्णनं क्रमोक्तिः । यथा—**

मृगशिशुकलकण्ठ नीलकण्ठैर्नयनक[29]लध्वनिकेशपेशलत्व[30]म् ।
उपवनमनुसम्प्र[31]याणवत्यास्तव[32] बत तस्क[33]रितं मृणालमध्ये ! ३२ ॥

---

१. लक्षणोऽर्थः-ग, २. विस्वा-ग, ३. सौरिं-ख, ४. पेसलम्-ख, ५. तपः-ख, ६. पदे-ग, ७. बल्लविहस्तरङ्कुरमणी-क, बालकुरंगनेत्रनयनी-ग, ८. मया-ख, ९. शरोज-क, १०. मूर्जस्वित्-ग, मूर्जस्वि-क । ११. तुगोत्तुङ्ग-ख, त्वंगं तु चलदश्व-ग, १२. भूमी-क, ख, १३. प्रोछूसद्-ख, १४. वीरवैर-क, वीरवैरि-ख, १५. तान्तार-ग, १६. कण्टांकुरान्-क, कुन्दांकुरा-ख, १७. च्चैः समन्तातवर-क, १८. उत्खाद्य-क, १९. प्रेष्याम-ख, २०. प्रायो-क, २१. कनीनिका-क, २२. म्बुजो-ख, २३. प्रार्थिनी-क, २४. भवता सेवार्थि-ख, २५. थ-ग, २६. केलिगृहं-ग, किलीगृहं-ख, २७. मस्मि-क, ख, २८. कमला-ख, २९. युगस्वन ग, ३०. पेशलालम्-क, ३१. सम्प्रयातवत्यास्-क, ख, ३२. बत नु-क, ३३. स्फुरित-क ।

(३१) किञ्चित्कार्यं कर्त्तुमारभ[1] माणस्य दैवात्तत्साधनं समा[2]पत्तिः समाहितं यथा—

हारकङ्कणकेयूरं मानि[3]न्यै ददतो[4] मुदे।
ममैवाऽजनि भाग्येन कलकण्ठकलध्वनिः ॥३३॥

(३२) उत्कर्षगुणैः स्तु[5]तिनिन्दार्थकीर्तनं तुल्ययोगिता। यथा—

इन्दुः सहस्रपत्रञ्च शत[6]पत्रं तवाननम् ॥
अप्य[7]म्बुजानि दध[8]ति कञ्चु[9]कं ह्यति[10]शीतलम् ॥३४॥

(३३) लेश[11]सम्भिन्नमर्थगू[12]हनं लेशः। यथा—

प्रस्वेदांकुरितो विघूर्णितलसन्ने[13]त्राम्बुजः श्रीपति—
र्वन्धूनां सविधे[14] कुरङ्गनयनामालोक्य लोलालकाम्।
इत्याहान्तरभावगोपनपरो बाहू विधायोच्चकै—
राः किं चण्डरुचिः कृशानुश[15]कलानुत्स्रष्टुमुत्कण्ठते ॥३५॥

(३४) उपमानोपमेयसंशयः[16]। यथा—

इदं मुख[17]मिदं चन्द्रबिम्बमित्यवधारि[18]तुम्।
प्र[19]सादभाजस्ते तन्वि ! प्रभ्वी भ[20]वति मे न[21] धीः ॥३६॥

(३५) एकस्यैवोपमानोपमेयत्व[22]कल्पनमनन्वयः। यथा—

वदनं वदनाकारं नयन नयनोपमम्।
वेणी वेणीव सुश्रोणि ! जघने जघने यथा ॥३७॥

(३६) एक[23]स्यार्थस्य क्रमेणोपमेयत्वमुपमानत्वञ्चोपमेयोपमा[24]। यथा—

---

१. कर्त्तुमनारम्भमाणस्य-क, मारभ्यमानस्य-ग, २. समायाति-क, समाप्ति-ग, ३. केयूरमानीय-क, ४. दधतो बने-ग। ५. स्तुनिन्द्यर्थ-ख, ६. सतपत्रं - क, ७. अथांबुजानि-ख, ८. दधती-ग, ९. कम्बुकण्ठयति-ख, कम्बुकंधत्ति-ग, १०. शीतताम्-ख, ग, ११. लेपाणां भिन्न-ख, लेशभिन्न-ग, १२. ग्रहनं-ख, गहन-ग, १३. नोत्राम्बुजः-क, १४. सचिवे-क, १५. किरणानु-ख, १६. संदेहः-ख, ग, १७. मुख्यमिदं-ग, १८. त्यवधारितम्-क, १९. प्रासाद-क, प्राशाद-ख, २०. प्रभुर्भवति-क, प्रभ्वीर्भवति-ख, प्रभुर्भवति-ग, २१. निधिः-ग, २२. एकस्यैवोपमेयत्वमनन्वयः-क, मानोपमेयकल्पनमनन्वयः-ख, एकस्यैवोपमानोपमेयत्वमनन्वयः-ग, २३. एकस्यैवार्थक्रमेणो-ख, २४. चोपमेयोपमेयता-ग।

कनकलतेव मृगाक्षी कनकलता वि[1]भाति तव[2] मृगाक्षीव।
इन्दीवरमिव नयनं नयनमिवेन्दीवरं तन्व्याः ॥३८॥

(३७) ना[3]नालङ्कारसंसृष्टिः संकीर्णम्। यथा—

दूरीकरो[4]ति शशिनं वद[5]नं सहासं
ते तन्वि ! चञ्चलदृगं चल[6]चक्रमेण।
कः कौमुदीजयविधौ तव[7] वर्त्ततेऽस्य
क्लेशा[8]द् यशो विजितभू[9]वलयान्तरस्य ॥३९॥

(३८) गम्भीरस्य वस्तुनो भावोक्तिवर्णनं भाविकम्[10]। यथा—

मनोह[11]रणि वागुरा सकलनेत्रमीनामृतं
प्रयाति पुलि[12]नं हरिस्त[13]रणिकन्यकाया इति।
कयापि गदिते सति व्रज[14]पथान्तरालेऽभवन्—
मुहुः सखि ! सखि त्वरा चल चलेति कोलाहलः[15] ॥४०॥

(३९) अभिलषितशंसनमाशिषम्[16]। यथा—

अंगानि तव गंगेशः कुन्द[17]कोरकदन्ति हे !
अनंगादवतात्ता[18]वद् यावदागच्छति प्रियः ॥४१॥
अथालंकारजातं हि मुख[19]यमेतावदेव हि।
अन्ये वैकल्पि[20]काः सर्वे विज्ञेया कि[21]ल तद्भवाः ॥४२॥
काश्यां वल्लभ[22]भट्टस्य पुत्रेण निरमाय्यसौ।
[23]निर्मला त्रिमल्ला[24]ख्येन रम्याऽलङ्कारमञ्जरी ॥४३॥

इति श्रीत्रिमल्लभट्टविरचिता
अलङ्कारमञ्जरी समाप्ता ॥[25]

---

१. विभासि-क, कनकलतेयं मृगाक्षीव-ख, कनकलता च हरिणाक्षीव-ग, २. त्वं-क, अन्यमातृकासु त्वंकारप्रयोगो नास्ति ३. अलंकारसंसृष्टिः—ग, ४. करोतु-ख, ५. सहसा-ग, ६. चलनक्रमेण-क, ७. वत-क, ८ क्लेशे-क, क्लेशो-ख, क्लेशा-ग, ९. विजित् तरुणि भूवलयान्तरस्य -क, विजितव भूवलयान्तरस्य-ख, विजितभूवलयाय तस्य-ग, १०. भावोक्तिः -क, ११. मनोहरण-ख, मनोहरिण-ग, १२. पुलिने-ख, १३. तारणि-ख, १४. वुजयथा-ख, १५. सखिप्रियेव-चलचलेति कोलाहलः-क, मुहुर्मुहुरतिप्रियश्चल चलेति कोलाहलः-ग, १६. माशीः-क, ख, आषिषम्-ग, १७. कन्दुकोरंद ददाति ते-ग, १८. अनंगादेवता छ्री-क, १९. मुच्यमेता-ग, २०. वैकल्पिता-क, २१. किमु-ख, २२. बल्लव-ग, २३. निर्मिता-ख, २४. त्रिमला-क, ख, ग, २५. इत्यर्थालंकारमञ्जरी-ख।

अथालङ्कारमञ्जर्या 'भ्रमरी'-नामधेया टीका

शुण्डादण्डजलक्षेपैर्ज्वलत्प्रत्यूहवह्नयः ।
स्मरणाच्छमिता यस्य जयत्येष विनायकः ॥ १ ॥

अदुष्यच्छब्दार्थैस्तनुनवलतौजो गुणमयी
अलङ्कारैर्हारैः कुचकलशमाधुर्यमनिशम् ।
मुहुर्मुग्धापाङ्गान् जगति विकिरन्ती नवरसैः
सुवृत्तश्रोणी राजतु कविमुखी काव्यमहिषी ॥ २ ॥

त्रिमल्लभट्टचूतजेऽलङ्कारमञ्जरीरसे ।
गुञ्जन्ती 'भ्रमरी'-टीका रमणीनूपुरायते ॥ ३ ॥

ग्रन्थप्रारम्भेऽलङ्कारमञ्जरीकारस्त्रिमल्लभट्टो मङ्गलाचरणमनुस्मरन् विघ्नोपशान्त्यर्थं श्रीगणेशस्तवनं 'कपोललम्बिलोलम्बे'त्यादिना करोति । ततः स्वप्रवृत्तिप्रयोजनं प्रवदन् ग्रन्थकारो व्याचष्टे यदल्पायासेनाऽलङ्काराणां जिज्ञासूनां कृते कर्णाभरणमञ्जरीस्वरूपिणी क्रियतेऽङ्कारमञ्जरीति । अलङ्कारान् ज्ञातुमिच्छवस्तथैवेमामलङ्कारमञ्जरीं श्रवणे दधतु स्मरन्तु वा यथा कर्णयोः श्रोत्राभरणमञ्जरी उच्चैस्तरामलङ्क्रियते । ततः स्वभावोक्तित आरभ्याऽऽशिषपर्यन्तमलङ्काराणामत्र वर्णितानां सूची प्रस्तूयते ग्रन्थकारेण 'स्वभावोक्त्युपमारूपके-त्यादिना गद्येन । अत्र ग्रन्थकारः परामृशति यदेत एवालङ्कारा मुख्यत्वेनाऽङ्गीक्रियन्तेऽन्येऽलङ्कारा एतद्भेदत्वेनोक्तत्वान्नाऽत्र स्थानं लप्स्यन्ते । एवं सूच्यां समुपस्थितानामलङ्काराणां सूत्ररूपत्वेन लक्षणं विलिख्योदाहरणश्लोका एवाऽत्र दरीदृश्यन्ते, नैतेषामलङ्काराणामत्र भेदोपभेदाः समुल्लिखिता वर्तन्ते ॥ अत्रानुष्टुभ् छन्दोऽवर्तत उभयोः । तल्लक्षणमुक्तम्—"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥" इति ॥१-२॥

प्रथमं तावत्स्वभावोक्तिमेवाऽऽचष्टे वाङ्मयस्य स्वभावोक्तिमूलकत्वादुक्तं यथा काव्यादर्शे दण्डिना—"भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम् ।"[1] तथा च—"नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद् विवृण्वती । स्वभावोक्तिश्च वक्रोक्तिश्चाद्यालङ्कृतिर्यथा ।"[2] स्वभावोक्तेराद्यालङ्कृतित्वात्तत्स्वरूपकथनं प्रथममौचित्यायैव कल्पते । अन्यदपि दृश्यते—"वक्रोक्तिश्च

---

१. काव्यादर्शे, २।३६३

२. तत्रैव, २।८

रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङ्मयम् ।"[1] तल्लक्षणमुक्तं ग्रन्थकारेण—"स्वभावकथनं स्वभावोक्ति"रिति ।। स्वस्य भावः स्वभावस्तं कथयत्येषा स्वभावोक्तिः। शिश्वादीनां स्वाभाविकवर्णने तेषां क्रियारूपादीनां कथने वा स्वभावोक्तिरलङ्कारो मम्मटाचार्येणाऽपि स्वीकृतः—"स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम् ।"[2]

किन्तु नाऽत्र शिश्वादीनां वर्णनमपितु शातोदर्या राधिकायाः कालिन्दीजलतः पुलिनप्रयाणे तस्या रम्यस्वभाववर्णनमेव 'लोलत्कुन्तलवारिबिन्दुविगलच्छ्री' त्यादिना कथितम् । 'रम्यस्वभावर्णनं स्वभावोक्तिः[3]' इत्युक्तत्वान् नायिकादीनामनापत्तेरादिपदान् मम्मटस्य। राधिकाया रम्यस्वभावकथनात्स्वभावोक्तिरस्त्येव ।। अत्र—"सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ।। ३ ।।

'किमप्येकदेशसाम्य'मित्यादिनोपमा लक्ष्यते । एकस्मिन् स्थाने किमप्यनिर्वचनीयं साम्यमवलम्ब्याऽधिकगुणस्य साम्यं न्यूनगुणो दधाति सोपमेति कथ्यते । न्यूनगुण उपमेयोऽधिकगुणस्योपमानस्य साम्यं दधाति साधर्म्यादिति । यथोक्तं वामनेन काव्यालङ्कारसूत्रे "उपमानेनोपमेयस्य गुणलेशतः साम्यमुपमा ।"[4] पयोधरभराक्रान्तेति ।। पुष्पगुच्छकैः सन्नता तरुसङ्गिनी वृक्षालम्बिनी लतेव पयोधरभराक्रान्ता कुचभारास्तोकनम्रा श्रीकृष्णबाहुपरिश्लिष्टा राधा शोभते । अत्रेवशब्दादुपमेया राधा न्यूनगुणवती सती पुष्पभाराक्रान्तलतारूपस्योपमानस्याऽधिकगुणं बिभ्रति । अन्याऽऽचार्येभ्य उपमालक्षणवैलक्षण्यममेवेदमिति ।। अत्रानुष्टुभ् छन्दस्तल्लक्षणमुक्तं प्रागेव ।। ४ ।।

सा इवादिभेदेति रूपकं लक्ष्यते । सोपमा चेदिवशब्दरहितोपमानोपमेययोरभेदात्मिका स्यात्तर्हि सैवोपमा रूपकालङ्कार इति निगद्यते । उपमानोपमेययोरभेदकथनमेव रूपकं मन्यन्ते विपश्चितः । यथोक्तम्—'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययो'[5] रिति । 'मुखं तुहिनदीधिति' रित्यत्र जगन्मोहिन्या नायिकाया मुखचन्द्रयोर्नेत्रनीलकमलयोर्वागमृतपरम्परयोर्हसितचन्द्रकिरणयोर्भ्रूमदनधनुषोः कुचकलभकुम्भयोश्चाऽभेदादत्र रूपकालङ्कारोऽङ्गीक्रियते । एतयोरुपमानोप-

---

१. सरस्वतीकण्ठाभरणे, ५।८

२. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, सूत्रं १६८

३. विश्वेश्वरपाण्डेयविरचितेऽलङ्कारप्रदीपे, सूत्रम् ४०

४. वामनस्य काव्यालङ्कारसूत्रे, ४।२।१

५. काव्यप्रकाशे, १०।१३९

मेययोश्चेदिवशब्दप्रवृत्तिः स्यात्तर्ह्येषोपमैव । यथोक्तम्—"उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमिष्यते ।"[१] अत्र पद्ये—"जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ।" इति पृथ्वी-छन्दो वर्तते ॥ ५ ॥

'आदिमध्यान्तस्थाने'ति दीपकालङ्कारो लक्ष्यते । यत्रैकैव क्रिया सम्पूर्णं वाक्यार्थं प्रकटयति तत्र दीपकालङ्कारो मन्यते । अलङ्कारोऽयं क्रियाया आदिमध्यान्तस्थानेषु स्थितेस्त्रिधा विभज्यते । तद्-आदिदीपकम्, मध्यदीपकम्, अन्त्यदीपकञ्च । वाक्यस्यादौ क्रिया चेत्तदादिदीपकालङ्कारः, मध्ये चेत्तन् मध्यदीपकालङ्कारः, अन्ते चेत्तदन्त्यदीपकालङ्कारश्च भवितुमर्हन्ति । यथोक्तमलङ्कारसर्वस्ववृत्तौ—"वस्तुतस्तु वाक्यार्थत्वे आदिमध्यान्तवाक्यगतत्वेन धर्मस्य वृत्तावादिमध्यान्तदीपकाख्यास्त्रयोऽन्यभेदाः ।।"[२] अनेककारकान्वितमेकक्रियादीपकमत्रोच्यते । आदिदीपकालङ्कारस्योदारणं ग्रन्थकारेण दीयते पानक्रियाया आदिस्थितत्वात् । मधुपैर्मधूनि, कामिभिर्बिम्बाधराः, कर्णैः कोकिलकाकलीकलरवाः, दृग्भिः प्राणेशमुखचन्द्राश्च पीयन्ते । अत्र चतुःकारकान्वितैका पानक्रिया वाक्यस्यादौ वर्तते, तस्मादत्रादिदीपकालङ्कारः । उदाहरणमत्र क्रियादीपकस्य दत्तम् । कारकम् एकञ्चेदनेकाभिः क्रियाभिरन्वितं भवति तत्र कारकदीपकं कथ्यते । उक्तं यथाऽलङ्कारप्रदीपे—"एककारकस्याऽनेकक्रियान्वयः कारकदीपकम् ।"[३] कारकदीपकस्य दत्तमुदारणं मम्मटेन—"स्विद्यति कूणति विचलति निमिषति विलोकयति तिर्यक् । अन्तर्नन्दति चुम्बितुमिच्छति नवपरिणया वधूः शयने ।"[४] दीपकालङ्कारे प्रकृताप्रकृतयोर्भिन्नपदार्थयोरेकधर्माभिसम्बन्धो भवति । सादृश्यस्य गम्यत्वादयमलङ्कारः सादृश्यमूलकः । उक्तं यथा काव्यप्रकाशे—"सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम् । सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम् ॥"[५] अत्रोदाहृतपद्ये शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः, लक्षणं प्रागेवोक्तम् ॥ ६ ॥

'विशिष्टार्थविवक्षयेत्यतिशयोक्ति लक्षयति । विशिष्टार्थं वक्तुमिच्छया यत्र क्रिया लोकमर्यादामुल्लङ्घयते तत्राऽतिशयोक्त्यलङ्कारो भवतीत्यर्थः । अग्निपुराणेऽलङ्कारस्याऽस्यैतदेव निरूपणं प्राप्यते—"लोकसीमानिवृत्तस्य

---

१. काव्यादर्शे, २।६६
२. अलङ्कारसर्वस्ववृत्तौ, पृ० ७२
३. विश्वेश्वरपाण्डेयकृतेऽलङ्कारप्रदीपे, सूत्रम्, ३६
४. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, श्लोकः ४५८
५. तत्रैव, १०/१५६

वस्तुधर्मस्य कीर्त्तनम् ।"[१] अग्निपुराणस्य परिभाषामिमामवलम्ब्याऽऽचार्योद्भटेनापि लिखितम्—'निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम् । मन्यतेऽतिशयोक्ति तामलङ्कारतया बुधाः ॥"[२] दण्डिना काव्यादर्शे वचनमेतदेवोदाहृतम्—"विवक्षा या विशेषस्य लोकसीमातिवर्त्तिनी । असावतिशयोक्तिः स्यादलङ्कारोत्तमा यथा ॥"[३] रुद्रटेनाऽपि तात्पर्यमेतदेव स्पष्टम् ।[४] उदाह्रियते—यत् कापि नायिका कण्ठे मृणालसंलग्नां नीलकमलदलैर्निर्मितां मालां धृत्वाऽपि श्रवणयुगले नीलकमलावतंसं नेत्रयुग्मेऽञ्जनं कृत्वाऽपि नीलवस्त्रं धृत्वा कस्तूरिकारसं रङ्गरागं परिकल्प्याऽपि कामदेवमग्रेसरं न कृतवती, तर्हि कथं नायकं गच्छेदिति लोके कामजनकनीलकमलाञ्जनवस्त्रमृगमदादीनां सत्त्वेऽपि मदनविभ्रमाभावाल्लोकमर्यादातिवर्तनादतिशयोक्तिरलङ्कारोऽस्ति । रुय्यकमम्मटादीनां मतेऽत्र कारणसत्त्वेऽपि कार्यानुत्पत्तेर्विशेषोक्त्यलङ्कारो भवितुमर्हति । अत्रोदाहृतपद्ये मन्दाक्रान्तावृत्तम्, तल्लक्षणमाह वृत्तरत्नाकरे—"मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत् ॥" ७ ॥

"किञ्चिद्वस्तूपलक्ष्ये"ति समासोक्तिर्लक्ष्यते । किञ्चिद्वस्तुन उपलक्षणं विधाय तत्समानस्य वस्तुनो वर्णनं समासोक्तिरिति कथ्यते । एकार्थाभिधानेनाऽपरस्याऽर्थस्य प्रतीतिः समासोक्तिर्भवति । यत्रैकमुपमानमेवोपमेयेन सार्द्धमखिलसाधारणविशेषणमभिधीयमानं सदुपमेयं गमयति सा समासोक्तिरुदिता काव्यशास्त्रिभिः । यथोक्तं रुद्रटेन—"सकलसमानविशेषणमेकं यत्राभिधीयमानं सत् । उपमानमेव गमयेदुपमेयं सा समासोक्तिः ॥[५] वामन आह—"अनुक्तौ समासोक्तिः ।"[६] उपमेयस्यानुक्तौ समानवस्तुन्यासः समासोक्तिः कथिता । स्वकीयां नायिकां त्यक्त्वाऽन्यनायिकां प्रति गन्तारं दूती ब्रवीति यद् हे भ्रमर ! कुन्दप्रसूने मकरन्दस्य स्वल्पविन्दुरपि वरम्, तत्र रात्रौ मा गमः, यतो हि रजन्यां कमले परागरसा सुलभा न वर्तन्ते, पद्मिनीनां म्लानत्वात् । अत्र भ्रमरोपमानेन नायकस्य कौन्दकुसुमेन स्वकीयानायिकायाः, कमलोपमानेन सुमुख्यायाः परकीयानायिकाया वर्णनात्समासोक्तिरस्ति । अत्र प्राचां मते समासोक्तिर्भवितुमर्हति, किन्तु मम्मटविश्वनाथादीनां मते कार्यस्य साम्यादपि लिंगादीनामसाम्याद्व्यव-

---

१. अग्निपुराणे, ३४४/२५
२. काव्यालङ्कारसारसंग्रहे, २/११
३. काव्यादर्शे, २/२१४
४. काव्यालङ्कारे (रुद्रटकृते), ९/१
५. तत्रैव, ८/६७
६. काव्यालंकारसूत्रे (वामनकृते), ४/३/३

हारारोपणाभावान्न समासोक्तिः । अत्राऽन्योक्तिरित्यपरोऽलङ्कारः स्यादिति । अत्रार्याछन्दस्तल्लक्षणमुक्तम्—"यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥"८॥

'सादृश्यलक्षणा वक्रोक्ति' रिति वक्रोक्तिं लक्षयति ।अस्याऽऽचार्यस्य त्रिमल्लभट्टस्य वक्रोक्तिलक्षणं वामनाऽनुसारमेव । यथोक्तं काव्यालङ्कारसूत्रे—"सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः[1] ।" सादृश्यनिबन्धना लक्षणा वक्रोक्तिः कथ्यते । अभिधेयार्थबाधे सति प्रयोजनात्तत्सम्बद्धसादृश्यमूलकोऽर्थो यत्र प्रतीयते तत्र वक्रोक्तिर्भवति । यथोक्तं मम्मटेन लक्षणालक्षणे—"मुख्यार्थबाधे तद्योगे रुढितोऽथ प्रयोजनात् । अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणाऽरोपिता क्रिया ॥"[2] वहतीत्युदाहरणं दीयते यत्कस्याश्चिन्नायिकाया वर्णनमित्थं वर्तते— तुङ्गकादम्बयुग्म आकाशगंगा प्रवहति, अन्धकारश्चन्द्रमण्डलं गिलति, तरलतारा च सुन्दरधारां वमति । कामदेवस्यैषा सृष्टिरन्यैव धन्यत्वं गच्छति । अत्र मुख्यार्थबाधात् तत्सादृश्यमूलकोऽर्थः प्रतीयते । नायिकाया उच्चस्तनयुग्मे श्वेतमणिमाला तरलतां भजते, अन्धकारवच्छ्यामला केशा मुखचन्द्रमाच्छादयत्येव, चञ्चलनयना रमणीकं कटाक्षमपि विदधाति च शीघ्रमेव । अहो ! रमणीया कामदेवस्य रमणीरूपा सृष्टिर्ब्रह्मणः सृष्टेरन्यैव । अत्र वक्रोक्तिलक्षणस्य सादृश्यलक्षणामूलकत्वादिदं नाऽन्याऽऽचार्यकृतवक्रोक्त्यलंकारं संगच्छते ॥ अत्र "ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकै" रिति मालिनीवृत्तम् ॥९॥

'इष्टार्थमनुक्त्वैवेति पर्यायोक्तिर्लक्ष्यते। अभीष्टार्थमकथयित्वैव तदर्थं यत्राऽन्यप्रकारेणाभिधीयते तत्पर्यायोक्तिरिति भण्यते । दण्डिनाऽप्येवमेव कथितम्—"इष्टमर्थम नाख्याय साक्षात्तस्यैव सिद्धये । यत् प्रकारान्तराख्यानं पर्यायोक्तं तदिष्यते ॥"[3] आचार्या अलंकारमिमं 'पर्यायोक्तम्' इति नाम्नाऽपि कथयन्ति । अपि च भामहेनाऽस्यैवं लक्षणं विहितम्—"पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाऽभिधीयते ॥"[4] अत्रोदाह्रियते 'मनोजतरुमञ्जरी' त्यादिना । हे कृष्ण ! कामदेवपादपमञ्जरी चकितखञ्जननेत्रा काचिद् गोपिकाऽद्यैव शीघ्रमेव निकुञ्जनिलयं गतवती । हे आर्य ! सुन्दर ! त्वमपि त्वरितमेव तत्र गच्छ । कोकिलकपोतादीनां कोलाहलो न मयाऽत्र निवार्यते । अत्र पिककपोतकोलाहलस्याऽनिवारणात्कामोद्दीपनं भविष्यतीत्यभिप्रायोऽन्यप्रकारेणोक्तः । अथवा नायिकासम्भोगे कंकण-

---

१. तत्रैव, ४/३/८

२. काव्यप्रकाशे, २/१२

३. काव्यादर्शे, २/२९५

४. काव्यालंकारे (भामहकृते), ३/८

किंकिणीनामाभूषणझंकारं रमणीसीत्कारं च न कोऽपि शृणुयादित्यर्थं कोकिल-कपोतादीनां कोलाहलो निवार्यते। पक्षिणां कोलाहलस्याधिक्यान्नायिकाभूषण-झंकृतेस्तत्सीत्कारस्य च श्रवणाभावत्वमत्र व्यङ्ग्यम्। अलंकारेऽस्मिन् व्यङ्ग्यस्य सत्त्वाद् हेमचन्द्रेणाऽस्य लक्षणं यदुक्तं तद् युक्तमेव—"व्यङ्ग्यस्योक्तिः पर्यायोक्तम्॥"[1] अत्रोदाहृतपद्ये "जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।" इति पृथ्वी-नामच्छन्दोऽस्ति॥१०॥

गुणजातिक्रियेत्यादिना विशेषोक्तिं लक्षयति। यत्र गुणक्रियाजातिभेदाद् वैकल्प्यस्य दर्शनं क्रियते तत्र विशेषोक्तिरलङ्कारो भवति। अत्रोदाहृतपद्ये चञ्चलनेत्राया नायिकाया कटाक्षविक्षेपश्चेतो व्यथयति कामबाणस्य चूतमञ्जर्यशिवाऽभावादपि। आम्रमञ्जरीकामचापयोश्च गुणाश्चञ्चलनेत्रायाः कटाक्षेपु स्थितास्तस्मादत्र गुणभेदाद् वैकल्प्यं दर्शितम्। वामनाचार्येणोक्तमस्य लक्षणम्—"एकगुणहानिकल्पनायां साम्यदार्ढ्यं विशेषोक्तिः।"[2] अत्रापि मनसिजबाण-गुणाभावे रसालमञ्जर्या गुणहानौ चापि चञ्चलनयनाकटाक्षविक्षेपेण सह दृढसाम्यं दर्शितमुभयोश्चित्तव्यथनशीलत्वात्। रुय्यकादिभिस्तु "कारणसामग्र्ये कार्यानुपपत्तिर्विशेषोक्तिः"[3] इति कथयद्भिः प्रसिद्धकारणसद्भावेऽपि कार्याऽभावो विशेषोक्त्यलङ्कारत्वेन भणितः। किन्त्वत्र कामबाणचूतमञ्जरी चञ्चलनयना-कटाक्षरूपकारणत्रयाणां मध्ये कारणद्वयस्याऽभावादपि कार्योत्पत्तिर्भवति। एषाऽन्यैव विशेषोक्तिरिति। अत्र पद्ये वृत्तमार्या नाम। लक्षणं प्रागेवोक्तम्॥११॥

'भावैः सहाख्यानमित्यादिना सहोक्तिर्लक्ष्यते। उभयोः पदार्थयोः सहभावत्वेन कथनं सहोक्तिः कथ्यते। अत्र भावैः सहाऽन्यस्य कथनं वरीवर्ति। सहकथनेन कस्यचिद् भावस्योभयोर्मध्ये प्रकाशनमपि भवति। वामनेनापि स्पष्टम्—"वस्तुद्वयक्रिययोस्तुल्यकालयोरेकपदाभिधानं सहोक्तिः[4]॥" अत्र नायिकावचनं स्मारितं यन्मम सन्तापैः सह चन्द्र उदयं गच्छति। नेत्रजलधाराभिः वायुर्भृशं प्रवहति, कर्णज्वरैः सह कोकिलः कूजति। अपि च तुच्छया विषम-मूर्च्छया सह रात्रिरपि वर्तते। अत्र सह शब्देन सन्तापचन्द्रयोः, अश्रुजलमरुतोः, कर्णज्वरपिकरवयोः, मूर्च्छानिशयोश्चैकभावापत्तिः प्रदर्शिता। अत्र पृथ्वी-छन्दस्तल्लक्षणं प्रागेवोक्तम्॥१२॥

---

१. काव्यानुशासने, षष्ठाध्याये, पृ० ३१६

२. काव्यालंकारसूत्रे ४/३/२३

३. अलंकारसर्वस्वे, पृ० १२६

४. काव्यालंकारसूत्रे, ४/३/२८

"सादृश्यप्राप्ते"त्यादिना व्यतिरेको लक्ष्यते । उभयोर्वस्तुनोः प्रस्तुताप्रस्तुतयोः सादृश्यप्राप्ते सति भेदकथनं स्याच्चेत्तर्हि व्यतिरेकोऽलंकारो भवेत्। व्यतिरेकस्य लक्षणं यत्कृतं त्रिमल्लभट्टेन तत्तु मम्मटकृतोपमालंकारं सङ्गच्छते, उक्तं यथा—"साधर्म्यमुपमा भेदे।"[1] किन्तु मम्मटेन न सादृश्यस्य कथनं कृतमपितु साधर्म्यमभ्युपगम्यते । अत्रोदाहृतपद्ये साधर्म्यं न दृश्यते—कस्याश्चिन्नायिकाया वर्णनं कुर्वता कविनोक्तं यन्नीलकमलनयना सुवर्णदेहयष्टिः कुचभारेण नतांगी नायिका, इन्दीवराण्येव नयने यस्या सा तया फलभारेण नताङ्ग्या हेमलतिकया तुल्यैव, किन्तु कनकवल्लर्येषा चैतन्यरहिता न चाऽसौ नायिका । गतचेतनत्वस्यैवोभयोः सादृश्ये सति भेदप्रकल्पनम् । व्यतिरेकस्य लक्षणमेतत्समेषामाचार्याणां विरुद्धत्वेनोक्तम् । उपमानादुपमेयस्याधिकगुणत्वे न्यूनगुणत्वे वा व्यतिरेकोऽलंकारः कथ्यते । किन्त्वत्र भेदस्य प्राधान्य भवत्येव—"भेदप्राधान्ये उपमानादुपमेयस्याधिक्ये विपर्यये वा व्यतिरेकः ।"[2] भेदशब्देनोपमानोपमेययोर्वैलक्षण्यमेवोक्तम् ।[3] अत्र गतचेतनत्वमुपमानभूतायां लतिकायां वर्णनादुपमेयस्याधिकगुणं चेतनत्वमुक्तं तदिदमुदाहरणं व्यतिरेकस्यैव। काव्यालंकारस्य टीकाकारो नमिसाधुर्व्यतिरेके सादृश्याभावत्वं निगदितवान्—"न चाऽत्रौपम्यालंकारभेदत्वमाशङ्कनीयम् । सादृश्याभावात् । उपमानोपमेयपदोपादानं तु व्यतिरेकसिद्ध्यर्थम् ।"[4] यतो हि रुद्रटो[5] वास्तवप्रभेदेषु व्यतिरेकालंकारमङ्गीकरोति । अत्रोदाहृतपद्येऽनुष्टुभ् वृत्तं वर्तते लक्षणं प्रागेव निगदितम् ॥१३॥

"प्रसिद्धकारणनिरासा"दित्यादिना विभावना लक्ष्यते। यत्र प्रसिद्धं कारणं हित्वा स्वाभाविकमेव कारणं विभाव्यते तत्र विभावनाऽलङ्कारोऽभिधीयते। रुद्रटेनापि विभावनाप्रकारान्तर एवमेव लक्षणमेकं निगदितम्—"यस्य यथात्वं लोके प्रसिद्धमर्थस्य विद्यते तस्मात्। अन्यस्यापि तथात्वं यस्यामुच्येत साऽन्येयम् ॥"[5]॥ अत्रोदाहरणे कामतरङ्गिण्याः कस्याश्चिन्नायिकाया रञ्जनरहितमधरतलमरुणिमानं भजते, अनञ्जिते नयने कृष्णच्छविं धारयतः, मुखं सुगन्धि विनाऽपि पर्याप्तं माधुर्यं धत्ते। अत्र रञ्जनाञ्जनसुरभिप्रसिद्धकारणाभावेऽपि रक्तिमश्यामरुचित्वमाधुर्यरूपस्वाभाविककारणवर्णनादत्र विभावनाऽ-

---

१. काव्यप्रकाशे, १०/१२५
२. अलंकारसर्वस्वे, पृ० ७६
३. तत्रैव, वृत्तौ, पृ० ७६
४. काव्यालंकारे (नमिसाधुटीकायाम्), ७/८६, पृ० ६३
५. तत्रैव, ६/२०

लङ्कारोऽस्ति । मम्मटादयस्तु "क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना"[1] इति कथयन्ति, तेषां मतेऽपि क्रियाया अर्थो हेतुरूपक्रियेत्यवसेयः । प्रसिद्धकारणं विना यत्र कार्योत्पत्तिः स्यात् तत्र विभावनाऽलङ्कार इति मन्तव्यः । अत्र रमणीवृत्तम् । लक्षणमुक्तम्—"नजनसभुक् च भवति रमणी ॥"१४॥

"उक्तिनिषेधोक्तिराक्षेप" इत्यादिनाऽऽक्षेपं लक्षयति । कञ्चिद् विशेषमर्थं वक्तुमिच्छया विवक्षिताया उक्तेर्निषेधो यत्र क्रियते तत्राऽऽक्षेपालङ्कारो भवितुमर्हति । मम्मटेनाप्युक्तम्—"निषेधो वक्तुमिष्टस्य यो विशेषाभिधित्सया । वक्ष्यमाणोक्तविषयः स आक्षेपो द्विधा मतः ॥[2]" एवमेव भामहोद्भटादिभिरपि व्याख्यातम् । अलङ्कारप्रदीपे भणितम्—"निषेधफलको विधिराक्षेपान्तरम् ॥[3]" आचार्यवामनेनाऽभिहितम्—"उपमानाक्षेपश्चाक्षेपः[4]" इति । यत्रोपमानस्याक्षेपः स्यादथवोपमानस्यैवाऽऽक्षेपो भवति तत्राऽऽक्षेपोऽलंकारः । किन्तु त्रिमल्लभट्टेन यथा लक्षणं विहितं तथोदाहरणं नोल्लिखितम् । यमुनाया जले गोपरमण्या अतिपल्लवावयवैर्भगवान् हरिरपि वशतां गतः । हा ! हा ! शिव ! शिव ! संसारे विषयोऽत्यन्तदुर्जयो भवति । विषयस्य दुर्जयत्वं लोके प्रसिद्धम् । "शिव ! शिव !" इत्यादिना शब्देन तमाक्षिप्य तथात्वसिद्ध्यै शेषवाक्यमभिहितम् । अस्योदाहरणानुसारमाचार्यरुद्रटेनाऽऽक्षेपो लक्षितः—"वस्तु प्रसिद्धमिति यद् विरुद्धमिति वाऽस्य वचनमाक्षिप्य । अन्यत्तथात्वसिद्ध्यै यत्र भूयात् स आक्षेपः ।[5]" अत्रोदाहरणेऽस्ति वृत्तमार्या नाम । लक्षणमुक्तमेव प्राक् ॥१५॥

"अन्यथास्थितवृत्ते" रिति लक्षयत्युत्प्रेक्षाम् । अत्र 'मन्ये' 'शङ्के' 'ध्रुव'-मित्यादिशब्दा उत्प्रेक्षाव्यञ्जका भवन्तीत्युक्तम् । अन्यत्प्रकारेण स्थितवृत्तेश्चेदन्यत्प्रकारेणोत्प्रेक्ष्य वर्ण्यते यत्र, तत्रोत्प्रेक्षालङ्कारो भवति । एवमेवोक्तं वामनेन—"अतद्रूपस्यान्यथाध्यवसानमतिशयार्थमुत्प्रेक्षा ।[6]" उदाहरणमुक्तं यद् हरिणनयनायाः कटाक्षपाता मोहनवृक्षस्य पुष्पाणि सन्तीति सत्यम् । अन्यथा कामदहनः शिवः कस्मात्कारणादधुनाऽपि पर्वतराजपुत्रीं वहति धारयति वा । अत्र 'शङ्के' पदेनोत्प्रेक्षालंकारो वाच्यत्वमुपगतः । "उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगः" इति लक्षणान्वितमत्र वसन्ततिलकावृत्तम् ॥१६॥

---

१. काव्यप्रकाशे, १०/१६२
२. तत्रैव, १०/१६१
३. अलंकारप्रदीपे (विश्वेश्वरपाण्डेयरचिते), सूत्रम् ३३
४. काव्यालंकारसूत्रे, ४/३/२७
५. काव्यालंकारे (रुद्रटकृते), ८/८९
६. काव्यालंकारसूत्रे, ४/३/९

"आश्रयस्य सम्पदो वे" ति लक्ष्यत उदात्तमिति। आश्रयस्य सम्पदां तस्य महत्त्वं वा यत्र वर्ण्यते तत्रोदात्तालंकारोऽभ्युपगम्यते। रुय्यकेनापि निगदितम्—समृद्धिमद्वस्तुवर्णनमुदात्तमङ्गभूतमहापुरुषचरितञ्च।[1]" एतल्लक्षणमेव काव्यप्रकाशे दृश्यते—"उदात्त वस्तुनः सम्पन्महतां चोपलक्षणम्।[2]" अत्रोदाहृतपद्ये स्फटिकमयकान्तस्तम्भगृहाभ्यन्तरे खञ्जरीटनयनाया रमण्यास्तनुलक्ष्मीः कोटिशः प्रतिबिम्बिता भवति तस्या मुखचन्द्रञ्च पश्यतो माधवस्य चिरायाऽवकलितत्वं गच्छति। अत्र स्फटिकघटितत्वाच्छालास्तम्भानां तत्राऽऽश्रयभूताया नायिकायाः सम्पदो वर्णनादुदात्तनामधेयोऽलंकारो वर्तते। तनुश्रियः कोटिशः प्रतिफलितत्वादतिशयविशेपकथनमुदात्तालंकारस्य लक्षणत्वं प्राप्यते। उक्तं यथाऽलंकारप्रदीपे "वस्तुनोऽतिशयविशेपकथनमुदात्तम्।"[3] अत्र मालिनी छन्दस्तल्लक्षणमुक्तं प्रागेव ॥१७॥

'स्वाभिप्रायं सङ्गोप्ये'त्यादिनाऽपह्नुतिं लक्षयति। स्वाभिप्रायो यत्र सङ्गोप्यतेऽन्योऽर्थश्च दर्शयते तत्राऽपह्नुतिर्नामालंकारो भवति। काव्यालंकारसूत्रे वामनेन निगदितम्—"समेन वस्तुनाऽन्यापलापोऽपह्नुतिः।[4]" प्रकृतेन प्रकृतस्यापलापोऽप्रकृतेन प्रकृतस्याऽपलापो यत्र दृश्यते साऽपह्नुतिर्द्विविधा कथ्यते हेमचन्द्रेण काव्यानुशासने—"प्रकृताप्रकृताभ्यां प्रकृतापलापोऽपह्नुतिः।[5]" त्रिमल्लभट्टेनाऽपह्नुतिलक्षणं कदाचिदग्निपुराणाद् गृहीतम्। अग्निपुराणेऽपह्नुति-लक्षणमेवमुक्तम्—"अपह्नुतिरपह्नुत्य किञ्चिदन्यार्थसूचनम्।[6]" उदाहरणमत्र त्रिमल्लभट्टेन दीयते—काचिद् विरहिणी नायिका सखीं प्रति ब्रूते यदुच्चैस्तरां कोकिलानां कण्ठमनोरमः कलकलो न, अपितु कालस्य डमरुकध्वनिः, चन्दनचारुविन्दुरमणीयो विधुर्न खलु, विषस्य मूलमेव। हे कुन्दपुष्पमनोहरदति! सखि! कुन्दपुष्पाणि कामदेवस्य बाणभूतानि। एवमेतत्सर्वं सौख्यायाऽन्येषां कृते, न मम। अत्र कोकिलकण्ठरवस्य, चन्द्रस्य, कुन्दस्य च येऽर्था वर्तन्ते, तेषां गोपनं कृत्वा कालडमरुकरवस्य, विषकन्दस्य कामदेवबाणस्य च स्फुटोऽर्थः कथितः। एवमपह्नुतिरलङ्कारोऽस्ति। अत्र शार्दूलविक्रीडितच्छन्दो वर्तते—सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्" इति लक्षणमुक्तम् ॥१८॥

---

१. अलंकारसर्वस्वे, पृ० १८३-१८४
२. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, १७६-१७७
३. अलंकारप्रदीपे, ५०
४. काव्यालंकारसूत्रे, ४/३/५
५. काव्यानुशासने, षष्ठाध्याये, पृ० ३३७
६. अग्निपुराणे, ३४५/१८

अनेकार्थमन्वययोग्यमिति श्लेषोऽभिधीयते। अत्र श्लेषोऽलङ्कारोऽर्थालङ्कार एवेति न शब्दालङ्कारः, अर्थालङ्कारमञ्जरीत्यपरनामधेयत्वादस्य ग्रन्थस्य। एवमुच्यते लक्षणमस्य, यद् यत्राऽनेकार्थं पदं चेदनेकत्राऽन्वययोग्यं दृश्यते तत्र श्लेषोऽलङ्कारो बुधैः कथितः। अर्थश्लेषस्य लक्षणं कुर्वता मम्मटेन भणितम्—"श्लेषः स वाक्य एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत्।"[1] एकस्मिन् वाक्ये यत्रानेकार्थात्मकं पदं प्रयुज्यते तत्रैव श्लेष उक्तः एवमेवोक्तं विश्वेश्वरपाण्डेयेन—"शब्दैक्ये सत्यनेकार्थकथनं श्लेषः।"[2] अनेकार्थं पदं यत्र प्राकरणिकयोरप्राकरणिकयोः प्राकरणिकाऽप्राकरणिकयोर्वा द्वयोरेवाऽथवाऽनेकेष्वेतेषु विशेष्यसाम्येऽन्वेति तत्रार्थश्लेष इत्युक्तं रुय्यकेन—"विशेष्यस्यापि साम्ये द्वयोर्वोपादाने श्लेषः।"[3] अत्रोदाहरणेऽलङ्कारत्वसुवर्णत्वसुरूपत्वसुगुणत्वानामर्थानामन्वयः कवितायां वनितायां लतायां च क्रियते। अतएवात्र श्लोके पूर्वार्द्धस्य पदानामर्थत्रयस्य कल्पनादर्थश्लेषाऽलङ्कारो मन्तव्यो न शब्दश्लेषः पदभङ्गाभावात्स्वरादिभेदाभावाच्च। अत्रानुष्टुभ्वृत्तम्। लक्षणं प्रागेवाऽभिहितम्॥ १६॥

'उक्तार्थस्याऽर्थान्तरेणे' ति लक्ष्यतेऽर्थान्तरन्यासः। उक्तः कश्चिदर्थश्चेदपरेण केनचिदर्थेन दाढ्यं भजते तत्राऽर्थान्तरन्यासो निगदितस्त्रिमल्लभट्टेन। आचार्यवामनस्याप्युक्तिरेतादृश्येव—"उक्तसिद्ध्यै वस्तुनोऽर्थान्तरस्यैव न्यसनमर्थान्तरन्यासः।"[4] एतत्तावदर्थो विमृश्यते यद् यत्र धर्मिणमुपमेयमर्थविशेषरूपं सामान्यरूपं वा परोपकारादिना केनचिद् धर्मेण सम्यगुक्त्वा तस्य धर्मस्य दृढीकरणायाऽपरं सामान्यं विशेषं च समानधर्मकमुपमानभूतमर्थं क्रमानुसारमेव न्यसते तत्राऽर्थान्तरन्यासो भवति। एवमेव काव्यालङ्कारे रुद्रटो ब्रवीति—"धर्मिणमर्थविशेषं सामान्यं वाऽभिधाय तत्सिद्ध्यै यत्र सधर्मिकमितरं न्यस्येत्सोऽर्थान्तरन्यासः"[5]॥ मम्मटादयस्तु प्रायोऽलङ्कारमिममेव परिभाषन्ते। कोऽपि नायको मृगनयनीं नायिकां ब्रूते—हे मृगलोचने! चुम्बितश्रवणं तव नयनं मम मनो हरति। यतो हि स्वच्छोऽपि कश्चित्पुरुषः क्रूराणां दुष्टानां सङ्गमात् पुंसां विकाराय भवत्येव। अत्र श्रवणचुम्बनेन नयनयोर्वक्रिमा स्फुटीभवति स श्रवणसंसर्गाद् वक्रिमैव नायकस्य मनोविकारहेतुत्वेन कथितः। अत्र श्लोक-

---

१. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, १४७ सूत्रम्।
२. अलङ्कारप्रदीपे, सूत्रम्, १५
३. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० ६५
४. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/२१
५. काव्यालङ्कारे (रुद्रटविरचिते), ८/७९

पूर्वार्द्धस्यार्थस्य श्लोकोत्तरार्द्धस्याऽर्थेन दृढीकरणम्। अत एवाऽत्राऽर्थान्तरन्यासो-ऽलङ्कारः। अत्राऽऽर्यावृत्तम्, लक्षणं प्राक् कथितमेव ॥ २० ॥

"पदपदार्थावृत्ती"त्यादिनाऽऽवृत्तिर्लक्ष्यते। अलङ्कारोऽयं प्राक्तनैराचार्यैर्न चर्चितः। यत्र पदस्य पदार्थस्य वाऽऽवृत्तिः स्यादथवा पदपदार्थयोरुभयोरेव भवेदावृत्तिः स आवृतिसञ्ज्ञकोऽलङ्कारः। कस्याश्चिन्नायिकाया वर्णने कविराह यत्साऽबला नायिका चञ्चलमृगनयनाञ्जनैः स्वकीयं नेत्रयुगलमञ्चति। पुष्पधन्वा पौष्पेण बाणेन स्वकीयं धनुरप्यञ्चति अत्राऽञ्चतिपदस्य, लोचनपदस्य धनुःपदस्य चाऽऽवृत्तिस्तेषामर्थानामप्यावृत्त्याऽत्राऽऽवृत्तिरलङ्कारो विजृम्भते। आवृत्तिर्नामा-ऽलङ्कारोऽयं लाटानुप्रास एव। लाटानुप्रासे पदस्य पदानां वाऽऽवृत्तिर्भवति, किन्तु तात्पर्यभेदो भवेदेव। उक्तं यथाऽऽचार्यमम्मटेन—शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रतः[1] ॥" किन्तु त्रिमल्लभट्टस्याऽऽवृत्त्यलङ्कारे पदस्य पदार्थस्य वा स्यादावृत्तिरथवोभयोरपि। एवमावृत्तिरलङ्कारो न शब्दालङ्कारोऽपितु स्यादर्था-लङ्कार इति। यत्र केवलं पदस्याऽऽवृत्तिः स्यात्तत्राप्यर्थ आवर्त्तत एव। शाब्दे चमत्कारे सत्यपि प्राधान्यमत्राऽर्थस्यैव। अर्थश्चेन्न चमत्कारं तर्हि लाटानुप्रास एव भवितुमर्हति। अत्राऽऽर्यावृत्तम्, लक्षणं प्रागेवोक्तम् ॥ २१ ॥

"यत्र निन्दाव्याजेने" ति व्याजस्तुतिर्लक्ष्यते। यत्र कविः कस्यचिद् वस्तुनः स्तुतिं निन्दाच्छलेन करोति तत्र व्याजस्तुतिर्नामाऽलङ्कारो निगद्यते। काव्यालङ्कारसूत्रेऽपि कथितं—"सम्भाव्यविशिष्टकर्माकरणान्निन्दास्तोत्रार्था व्याजस्तुतिः।"[2] यत्राभिधीयमाना स्तुतिः प्रमाणान्तरबाधितत्वान्निन्दारूपे पर्यवस्यति, अथवा यत्राऽभिधीयमाना निन्दा पूर्ववद् बाधितस्वरूपा स्तुतौ पर्यवस्यति तत्र व्याजस्तुतिर्द्विविधा भवति। उक्तं यथाऽलङ्कारसर्वस्वे—"स्तुतिनिन्दाभ्यां निन्दास्तुत्योर्गम्यत्वे व्याजस्तुतिः।[3] एवमेव प्रायः सर्वैरेवाऽऽ-चार्यैरलङ्कारोऽयं परिभाषितः तस्मान्नैतत्सम्बन्धे काचिद् विप्रतिपत्तिर्दृश्यते। उद्भटो ब्रवीति यद् यत्राभिधया तावन्निन्दा प्रतीयते किन्तु वस्तुतस्तत्र श्रेष्ठा स्तुतिरेव स्यात्तर्हि सा व्याजस्तुतिर्ज्ञेया—"शब्दशक्तिस्वभावेन यत्र निन्देव गम्यते। वस्तुतस्तु स्तुतिः श्रेष्ठा व्याजस्तुतिरसौ मता ॥"[4] उदाहरणेऽत्र काम-देवेन पञ्चभिर्बाणैः पृथिवी जिता, त्वया रमण्यैकेन कटाक्षेण जगती जिता वशीकृताऽपि च यौवनमदैस्तावदलम्। यौवनमदानामाधिक्यादिति

---

१. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, सूत्रम् ११२

२. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/२४

३. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० ११२

४. काव्यालङ्कारसारसङ्ग्रहे, ५/६

पर्याप्तार्थाभिधानार्थमलंवचनम् । अत्रैकेन नयनान्तेन पृथिव्या विजयाभिधानान्नायिकायाः परपुरुषासक्तिविषयको निन्दार्थः प्रतिपद्यते । परन्तु यत्कार्यं मदनेन पञ्चभिर्बाणैरासादितं तदेव कार्यं रमण्याः कटाक्षेणैकेनैव विहितत्वात्तस्याः स्तुतिरत्र प्रकाशिता, अपि च यौवनमदस्यावशिष्टत्वात्तस्याः कामदेवाद् बलाधिक्यं वरीवर्त्ति । अत एवाऽत्र स्तुतावेव निन्दाया पर्यवसानाद् व्याजस्तुतिरलङ्कारोऽस्ति । अत्रानुष्टुभ् वृत्तम्, लक्षणं प्रागेवोक्तम् ॥ २२ ॥

"अन्यार्थप्रवृत्तेन वाक्येने"ति निदर्शनं निदर्शनाख्यं वाऽलङ्कारं लक्षयति । यत्राऽन्यार्थकवाक्येन तत्सदृशं किञ्चिदन्यकथनं चेद् दृश्येत तत्र निदर्शनं नामालङ्कारो भवेत् । मम्मटादयस्तु निदर्शनमलङ्कारं निदर्शनेति-नामधेयेन पठन्ति । अनुपपद्यमानयोर्वस्तुनोः सम्बन्धश्चेदुपमारूपत्वेन पर्यवस्यति तर्हि निदर्शनाख्योऽलङ्कारः, उक्तं यथा मम्मटेन —"अभवद्वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः ।"[1] आचार्यवामनस्तु ब्रवीति यद् यत्र क्रिययैव स्वस्य स्वहेतोश्चाऽन्वितिः क्रियते तत्र निदर्शनं नामालङ्कारो भवितुमर्हति—"क्रिययैव स्वतदर्थान्वयख्यापनं निदर्शनम् ।"[2] इममेवार्थं विज्ञाय मम्मटेनाऽपरा निदर्शना प्रख्यापिता । यथा—"स्वस्वहेत्वन्वयस्योक्तिः क्रिययैव च साऽपरा ॥"[3] निदर्शनायां दृष्टान्तवद् बिम्बप्रतिबिम्बभावो दृश्यते । किन्तु न दृष्टान्तवत् परस्परनिरपेक्षयोर्वाक्ययोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावो भवत्यत्र, सापेक्षयोर्वाक्ययोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावत्वेन निदर्शना निगद्यते । उक्तं लक्षणं यथा रुय्यकेन —"सम्भवताऽसम्भवता वा वस्तुसम्बन्धेन गम्यमानं प्रतिबिम्बकरणं निदर्शना ।"[4] अनेन मम्मटस्योभयोर्लक्षणयोरन्तर्भावः । ग्रन्थकारेणोदाह्रियते यद् एष दाक्षिणात्यो वायुः प्राणानाह्लादयति । हे तन्वङ्गि ! मित्रानुग्रह आत्मीयसम्पत्तीनां फलमाह्लादयत्येव । अत्र 'दक्षिणानिलः प्राणानाह्लादयति' इति वाक्येन 'सुहृदनुग्रह आत्मीयसम्पदां फल'मिति तत्सदृशमेव वाक्यार्थत्वादिष्टवाक्यसिद्ध्यर्थं दृष्टान्त उपस्थापितः । अतएव हेमचन्द्रेणोक्तम् —"इष्टसिद्ध्यै दृष्टान्तो निदर्शनम् ।"[5] अत्रानुष्टुभ् वृत्तम्, लक्षणं चोक्तमेव ॥ २३ ॥

'अप्रस्तुतस्ये'ति लक्ष्यतेऽप्रस्तुतप्रशंसा । अप्रस्तुतस्याऽप्राकरणिकार्थस्य प्रशंसनेन कथनेन यत्र प्रस्तुस्य प्राकरणिकस्य तावत्प्रशंसनं भवति तत्राऽप्रस्तुत-

---

१. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, १४९ सूत्रम्

२. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/२०

३. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, १५० सूत्रम्

४. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० ७६

५. काव्यानुशासने, षष्ठाध्याये, पृ० ३०२

प्रशंसाख्योऽलङ्कारः स्यात्। अग्निपुराणेऽयमलङ्कारः 'स्तुतिः' 'स्तुतो' वाऽलङ्कारनाम्नाऽभिधीयते—"अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुतिः।"[१] अग्निपुराणादेव लक्षणमादाय भामह इममलङ्कारमप्रस्तुतप्रशंसानामधेयेन ब्रवीति—"अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुतिः। अप्रस्तुतप्रशंसेति।"[२] किं चोद्भटेनापि लक्षणमेवमेव विहितम्—"अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुतिः। अप्रस्तुतप्रशंसेयं प्रस्तुतार्थानुबन्धिनी।"[३] अस्य व्याख्यां कुर्वता प्रतीहारेन्दुराजेन लिखितम्—"अधिकारादुपवर्णनावशादपगतस्य प्राकरणिकादपरस्य वस्तुनो यत्रोपनिबन्धः साऽप्रस्तुतप्रशंसा।"[४] वामनाचार्यमतेनोपमेयस्य किञ्चिदुक्तिश्चेत् स्यात्तत्राऽप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारो भवितुमर्हति—"किञ्चिदुक्तावप्रस्तुतप्रशंसा।"[५] अस्य वृत्तौ तावदुच्यते—"अप्रस्तुतस्यार्थस्य प्रशंसनमप्रस्तुतप्रशंसा।"[६] उदाहरणेऽत्र काचिद् विरहिणी स्वसखीं ब्रूते—हे सखि! सुन्दरनिकुञ्जविहारिणी हरिणी खलु धन्या दृश्यते, यस्याः प्रियतमो हरिणः क्षणमपि नेत्रमार्गतो न दूरं तावद् गच्छति। अत्राऽप्रस्तुतस्य हरिणी-वृत्तान्तस्य प्रशंसनेन खलु विरहिण्या नायिकाया वृत्तान्तरूपस्य प्रस्तुतस्य प्रशंसनादप्रस्तुतप्रशंसाख्योऽलङ्कारो वर्त्तते। अतएव मम्मटोऽपि कथयति—'अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया।"[७] अत्रोदाहरणे वर्तत आर्याच्छन्दस्तल्लक्षणं प्रागेवाऽभिहितम्॥ २४॥

"अर्थानां परावर्तने" ति परिवृत्तिर्लक्ष्यते। यत्रार्थस्य परस्परं विनिमयो भवेत्तत्र परिवृत्तिर्नामाऽलङ्कारो भवति। वामनाचार्यो लिखति यद् यत्र समेन विसदृशेन वाऽर्थेनाऽर्थस्य परिवर्तनं स्यात्तर्हि परिवृत्तिरलङ्कारो निगद्यते—"समविसदृशाभ्यां परिवर्तनं परिवृत्तिः"[८] अलङ्कारेऽस्मिन् किञ्चिद्दत्वा कस्यचिदादानं क्रियतेऽर्थविनिमयोऽलङ्कारेऽत्रैप भवत्येव। अलङ्कारसर्वस्वे "समन्यूनाधिकानां समाधिकन्यूनैर्विनिमयः परिवृत्तिः"[९] इति कथित्वात्।

१. अग्निपुराणे, ३४५/१६
२. काव्यालङ्कारे (भामहकृते), ३/२९
३. काव्यालङ्कारसारसङ्ग्रहे (उद्भटप्रणीते), ५/८
४. तत्रैव, प्रतीहारेन्दुराजटीकायाम्, ५/८
५ काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/४
६. तत्रैव, वृत्तौ, ४/३/४
७. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, १५१ सूत्रम्
८. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/१६
९. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० १५२

प्रायः काव्यप्रकाशेऽप्येवमेव लक्षणमुक्तम् परिवृत्तिर्विनियमो योऽर्थानां स्यात् समासमैः ।''[1] किञ्चित्प्रदानं कृत्वा कस्यचिदादानमेव सामान्यतया परिवृत्तेर्लक्षणत्वादुक्तमलङ्कारप्रदीपे—''किञ्चिद्दत्वा कस्यचिदुपादानं परिवृत्तिः ॥''[2] कश्चित्कान्तो हारकेयूरकङ्कणाभरणानि मृगलोचनायै स्वदयितायै ददाति, ततः स तस्या दयितायाः चुम्बनालिङ्गनभाषणादि च गृह्णाति । एवमत्राऽऽभूषणानि दत्वा चुम्बनाद्यादानात्परस्परमर्थविनिमयत्वात्परिवृत्तिरलङ्कारः । हेमचन्द्रोऽमुमेवाऽलङ्कारं 'परावृत्ति'रिति नाम्ना कथितवान्—''पर्यायविनिमयौ परावृत्तिः ।''[3] अत्रोदाहृतपद्येऽनुष्टुभ्-वृत्तम्, लक्षणमुक्तं प्रागेव ॥२५॥

''विशिष्टदर्शनाय विरुद्धाचरणमिति विरोधो लक्ष्यते । यत्र कञ्चिद् विशिष्टार्थं प्रकाशयितुं पदार्थानां विरुद्धाचरणं तत्संसर्ग च दर्श्यते तत्र विरोधोऽलङ्कारो भवति पदार्थानां परस्परविरुद्धत्वात् । अत्र न पदार्थानां वास्तविकः कश्चिद् विरोधोऽपितु विरोधस्याऽऽभासत्वाच्चमत्कारोऽस्मिन्नाधीयते । अतएव वामनाचार्यो ब्रवीति—''विरुद्धाभासत्वं विरोधः ।''[4] एतल्लक्षणमेव रुय्यकेनापि लिखितमलङ्कारसर्वस्वे ।[5] काव्यप्रकाशेऽविरोधे सत्यपि विरुद्धत्वाद् यद् वर्णनं क्रियते स विरोधः—''विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः ।''[6] किञ्च द्रव्यगुणक्रियाजातीनां विरुद्धानामेकत्राऽवस्थानं यत्र दृश्यते स विरोधोऽलङ्कारः । उक्तं यथा काव्यालङ्कारे—''यस्मिन्द्रव्यादीनां परस्परं सर्वथा विरुद्धानाम् एकत्रावस्थानं समकालं भवति स विरोधः ।''[7] अत्रोदाहरणे मलयपर्वतोत्सङ्गपटीरवाटिकापरिचयः सुगन्धिर्वायुस्तावदागच्छति, किन्तु रमणीमनोऽन्तराले तु विषमा प्रलयाग्निशङ्का सममेवोदयति । अत्र मलयाचलवायुकृतप्रलयानलाभिशङ्कावचनेन विरोधो दक्षिणानिलस्याऽकार्यत्वात् । मलयगिरिजातवायोर्विरहिण्या दुःखकारित्वादर्थस्य विरोधाभासत्वेन विरोधोऽलङ्कारः । अतएव काव्यानुशासन उक्तम्—''अर्थानां विरोधाभासो

---

१. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, १७२ सूत्रम्

२. अलङ्कारप्रदीपे (विश्वेश्वरपाण्डेयकृते), सूत्रम् ४५

३. काव्यानुशासने, षष्ठाध्याये, ३३८

४. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/१२

५. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० १२१

६. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, सूत्रम् १६६

७. काव्यालङ्कारे (रुद्रटकृते), ९/३०

विरोधः ।"[१] अत्र पुष्पिताग्रा वृत्तम् । लक्षणं यथा—"अयुजि नयुग रेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।" ॥ २६ ॥

"सहेतुवर्णन"मिति हेतुर्लक्ष्यते । यत्र वाक्यार्थत्वेन पदार्थत्वेन वा स्वतोऽनुपपद्यमानार्थस्योपपादकहेतुश्चेत् कथ्यते, तत्र हेत्वलङ्कार । कारकज्ञापक-भेदाद् द्विधा हेतुस्तावद् विद्यते । हेत्वलङ्कारे कारकहेतोरुक्तत्वादस्य ज्ञापक-हेतुकादनुमानालङ्काराद् भेदो दरीदृश्यते । रुद्रटेन काव्यालङ्कारे निगदितं यद् यत्र हेतुमता कार्येण साकं हेतोः कारणस्य तावदभेदकृदभेदेन भवेदभिधानं तत्र हेत्वलङ्कारो भवितुमर्हति—"हेतुमता सह हेतोरभिधानमभेदकृद् भवेद् यत्र । सोऽलङ्कारो हेतुः स्यादन्येभ्यः पृथग्भूतः ॥"[२] अन्ये मम्मटादयस्तु हेत्वलङ्कारं काव्यलिङ्गमिति ब्रुवन्ति । उक्तं यथा काव्यप्रकाशे—"काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्य-पदार्थता ॥"[३] उदाहरणेऽत्र विकसितपङ्कजवनानामाधूननं स्मितविशदपुष्कराणा-मास्वादनं सस्तबकलवङ्गलतानामालिङ्गनं वायोरागमनञ्चाऽनेकवाक्यार्थरूपत्वेन चर्चितः, मम वियोगिन्या हिंसनत्वं च हेतुत्वेनोपकल्पितत्वाद् हेत्वलङ्कारोऽभि-धीयते । अत्र "म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्" इति लक्षणत्वात्प्रहर्षिणी-नामच्छन्दोऽस्ति ॥ २७ ॥

"इङ्गिताकारलक्ष्य" इति सूक्ष्मं लक्षयति । यत्रेङ्गितेन सङ्केतविशेषे-णाऽऽकारेण वा कश्चित् सूक्ष्मोऽर्थोऽवगम्यते तत्र सूक्ष्मालङ्कारत्व-मभ्युपगम्यते । भामहमतेनात्र वैचित्र्याभावान्नाऽलङ्कारत्वमस्याऽङ्गीकर्तुं शक्यम् । किन्तु दण्डी काव्यादर्शे सूक्ष्मालङ्कारस्य लक्षणमेवमेव स्वीकरोति—"इङ्गिता-कारलक्ष्योऽर्थः सौक्ष्म्यात् सूक्ष्म इति स्मृतः ।"[४] रुद्रटेन लिखितं यत् प्रतिपाद्येऽर्थेऽ-युक्तिमदर्थः शब्दो यत्रात्मीयार्थसम्बद्धमर्थान्तरं प्रत्यापयति । एतदर्थान्तरमुप-पत्तिमत्त्वेन सहृदयो जानाति—"यत्रायुक्तिमदर्थो गमयति शब्दो निजार्थ-सम्बद्धम् । अर्थान्तरमुपपत्तिमदिति तत्सञ्जायते सूक्ष्मम् ॥"[५] रुय्यकेनाऽस्य लक्षणमुक्तम्—"संलक्षितसूक्ष्मार्थप्रकाशनं सूक्ष्मम् ।"[६] वृत्तौ तेन कथ्यते यद् "इह सूक्ष्मः स्थूलमतिभिरसंलक्ष्यो योऽर्थः स यदा कुशाग्रमतिभिरिङ्गिता-

---

१. काव्यानुशासने, पृ० ३२२ (षष्ठाध्याये)
२. काव्यालङ्कारे (रुद्रटकृते) ७/८२
३. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, १७४ सूत्रम् ।
४. काव्यादर्शे, २/२६०
५. काव्यालङ्कारे (रुद्रटप्रणीते), ७/९८
६. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० १७२

काराभ्यां संलक्ष्यते ।"[1] मम्मटाचार्योऽपि सूक्ष्मालङ्कारस्य लक्षणमेवमेवाऽऽह—"कुतोऽपि लक्षितः सूक्ष्मोऽप्यर्थोऽन्यस्मै प्रकाश्यते । धर्मेण केनचिद् यत्र तत्सूक्ष्मं परिचक्षते ॥"[2] अत्रापि "कुतोऽपि आकारादिङ्गिताद् वा" इति वृत्तौ निगदितम् । अस्ति तावदत्र किञ्चिद् वैचित्र्यम् । निदर्शनेऽत्र कामबाधया खिन्नमनस्कं हरिमवलोक्य राधा गुरूणां सभायां दर्पणबिम्बं विभावयति । अत्र दर्पणबिम्ब-विभावनेङ्गिताद् गुरुजनसभायां सुरतोत्सुक्यमनौचित्यं हरेरिति सूक्ष्मोऽर्थो व्यज्यते । अलङ्कारमञ्जर्यां वेणीदत्तेन सूक्ष्मालङ्कारस्य लक्षणमलेखि—अन्यस्मै क्रियते यत्र सूक्ष्मार्थस्य प्रकाशनम् । केनचित् स्मारकेणेदं सूक्ष्ममित्यभिधीयते ॥"[3] तेनैव तत्रैतादृशमेवोदाहरणमपि दत्तम्—"दूरादेव प्रियं ज्ञात्वा रतिलोलुपमानसम् । करोति सस्मिता तन्वी लघु लीलाब्जमुद्रणम् ।" एतस्मादर्थवैचित्र्यात्सूक्ष्मालङ्कारोऽलङ्कारत्वेनाभ्युपगन्तव्य इति । अत्रोदाहरणे तावदार्याजातिस्तल्लक्षणं प्रागेवोक्तम् ॥ २८ ॥

"रसपेशल रसवदि" ति रसवदलङ्कारो लक्ष्यते । रसाद्यलङ्काराणां विषये कथितमानन्दवर्धनेन यद् यत्र प्रधाने वाक्यार्थे रसभावभावाभासरसाभास-भावशान्तयश्चाऽङ्गत्वेन वर्तन्ते तत्र काव्ये रसवदाद्यलङ्कारोऽङ्गीकर्त्तव्यः—"प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गं तु रसादयः । काव्ये तस्मिन्नलङ्कारो रसादिति मे मतिः ॥"[4] किन्तु काव्येऽलङ्कार्यत्वात्प्राधान्येन स्थिता रसादयो नाऽलङ्कारत्वमुपयान्त्यसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनित्वात् । उक्तं यथा मम्मटेन —"रसभावतदाभासभावशान्त्यादिरक्रमः । भिन्नो रसाद्यलङ्कारादलङ्कार्यतया स्थितः ।"[5] रसवदाद्यलङ्कारलक्षणमुक्तं रुय्यकेन—"रसभावतदाभासतत्प्रशमानां निबन्धनेन रसवत्प्रेयऊर्जस्विसमाहितानि ।[6] किञ्चाऽत्र रसवदाद्यलङ्कारेषु प्रकृतस्य वाक्यार्थीभूतत्वेन प्रधानस्य रसादेरुपस्कार्यस्याऽङ्गत्वेन रसादेरलङ्कारत्वमभिहितम् । अपि चोक्तमेव—प्रधानतां यत्र रसादयो गता रसो रसादिध्वनिगोचरो भवेत् । भवन्ति ते यत्र रसादिपोषका रसाद्यलङ्कारदशा हि सा पृथक् ॥[7]

---

१. तत्रैव, वृत्तौ, पृ० १७३
२. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, सूत्रम् १९०
३. अलङ्कारमञ्जर्याम् (वेणीदत्तरचितायाम्), श्लोक १७३, १७४
४. ध्वन्यालोके, २/५
५. काव्यप्रकाशे, चतुर्थोल्लासे, सूत्रम् ४२
६. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० १८५
७. तत्रैव, विमर्शिणीटीकायाम् पृ० १८६

यत्र रसस्य पेशलत्वं तावद् वाक्यार्थे प्राधान्ये सत्यङ्गत्वेनोच्यते तत्र रसवदलङ्कारः स्यात्। अत्र गुणीभूतो रस एव रसवदलङ्कारं जनयति। अतएव काव्येऽत्र गुणीभूतव्यङ्ग्यत्वं भवति रसस्य गुणीभूतत्वात्। उक्तं यथा मम्मटेन – "अन्यत्र तु प्रधाने वाक्यार्थे यत्राङ्गभूतो रसादिस्तत्र गुणीभूतव्यङ्ग्ये रसवत्प्रेय ऊर्जस्वि-समाहितादयोऽलङ्कारा:।"[१] नाऽत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारो मन्तव्यो वस्तुसंवाद-रूपत्वात् स्वभावोक्तेश्चित्तवृत्तिसमाधिरूपत्वाच्च रसवदलङ्कारस्य। न चोदात्तालङ्कारस्य विषया: स्यू रसादिध्वनिना व्याप्तत्वाद् रसवदाद्यलङ्काराणाम् अत्रोदाहरणे यज्ञशतकरणगोकोटिदानादिकथनेन दानवीररसो, बालचन्द्रशेखरस्य शिवस्य पदद्वन्द्वे मनसो लीनत्वाच्छान्तरसः, उभयोर्वीरशान्तयोरङ्गत्वादुक्त्वाऽभिनवाब्जरमणमुख्या बालाया सस्मेरमालिङ्गनेन सम्भोगशृङ्गारस्य वाक्यार्थभूतत्वाद् रसवदलङ्कारो दृश्यते। अलङ्कारेऽस्मिन् रसस्य पराङ्गत्वं भवत्येव। यथोक्तमलङ्कारप्रदीपे—"रसस्य पराङ्गत्वे रसवदलङ्कारः"[२] इति। अत्र शार्दूल-विक्रीडितवृत्तं तल्लक्षणं प्रागेवोक्तं वर्तते ॥२६॥

"साऽहङ्कारकथन"मित्यूर्जस्वी लक्ष्यते। रसवदलङ्कारानन्तरं क्रमप्राप्तं प्रेयोऽलङ्कारलक्षणमाक्षिप्य प्रथमं तावदूर्जस्विलक्षणं विधीयते त्रिमल्लभट्टेन रसाभासभावाभासयोरुभयोरप्यङ्गत्वात्। अहङ्कारपूर्वकं रसाभासभावाभास-योर्निबन्धनं यत्र स्यात्तत्रोर्जस्विनामाऽलङ्कारो भवेत्। रसभावयोरनौचित्येन प्रवृत्तिरेव रसाभासभावाभासौ कथ्येते। उक्तं यथा काव्यप्रकाशे—"तदाभासा अनौचित्यप्रवर्त्तिता:।"[३] अस्याऽलङ्कारस्य विषयेऽलङ्कारसर्वस्ववृत्तौ निगदितम्—"एवमूर्जो बलं विद्यते यत्र तदपि निबन्धनमेव। अनौचित्यप्रवृत्तत्वादत्र बलयोगः।"[४] अनौचित्यप्रवर्तितयो रसभावयोर्बलप्रयोगो दृश्यत एव, स ऊर्ज-स्व्यलङ्कारः। यथोदाहृतं ग्रन्थकारेण—कश्चिन्नायको बालमृगाक्षीं नायिकां ब्रूते, हे बालमृगलोचने! यत् प्रचलदुच्चैरश्वखुरैर्विदलतः क्षोणीतलात्प्रोल्ल-सद्भिर्धूलिभिर्धूसराणां शत्रुवीरकदलीवनकुन्दानामङ्कुरान् स्विद्यच्छुण्डा-दण्डेनोच्चैः शीघ्रं तावत् क्रोधाक्रान्तगजपुङ्गव इवाऽहंमुत्थाय त्वां प्रेक्षे, त्वं वस्त्राञ्चलं तावन्मुञ्च। अत्र वीररसानन्तरं सम्भोगशृङ्गारस्याऽनौचित्यात्पर-कीयनायिकाविषयकरागोपनिबन्धनाद् वस्त्राञ्चलमोचनकृतकत्वराचिन्ताक्रोधा-देर्भावस्यानौचित्याच्चाऽत्र रसाभासभावाभासत्वम्। तयोरङ्गत्वेन स्थिते-

---

१. काव्यप्रकाशे, वृत्तौ, ४/४२

२. अलङ्कारप्रदीपे (विश्वेश्वरपाण्डेयनिर्मिते), ११५

३. काव्यप्रकाशे, चतुर्थोल्लासे, सूत्रम् ४६

४. अलङ्कारसर्वस्वे, वृत्तौ, पृ० १८६

नायिकस्य दर्पयुक्तवचनाच्चाऽत्रोर्जस्विनामालङ्कारो विद्यते । रसाभासभावाभासयोः पराङ्गत्वेऽलङ्कारोऽयमुच्यते—"रसाभासभावाभासपराङ्गत्वे ऊर्जस्वी"[१] इत्युक्तत्वात् । अत्रापि शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः, लक्षणमुक्तं प्रागेव ।। ३० ।।

"प्रियकथनं प्रेयः" इति प्रेयो लक्ष्यते । प्रियस्य कस्यचिद् भावस्य कथनं प्रेयोऽलङ्कारत्वेनाऽङ्गीक्रियते । अत्र भावस्याङ्गत्वेनाख्यानं भवति । अत एवाऽलङ्कारप्रदीपे लक्षणमुक्तम्—"भावस्य पराङ्गत्वे प्रेयो नामालङ्कारः ।"[२] किन्तु दण्डिनाऽत्र रसवदाद्यलङ्कारा एवं लक्षिताः—"प्रेयः प्रियतराख्यानं रसवद् रसपेशलम् । ऊर्जस्वि रूढाहङ्कारं युक्तोत्कर्षं च तत्त्रयम्"[३] । त्रिष्वप्येतेष्वलङ्कारेषु चमत्कारातिशयादलङ्कारत्वं भवत्येव । अलङ्कारसर्वस्वेऽप्युक्तं यदत्रालङ्कारे प्रियतरनिबन्धनं स्यात्—"प्रियतरं प्रेयो निबन्धनमेव द्रष्टव्यम् ।"[४] काचिन्नायिकाऽत्र प्रियतमं कथयति—हे नाथ ! भवतो मुखाम्बुजपायिनी नेत्रविशालताऽद्य खलु सार्थकत्वमुपगता । भवतः सेवासु लोलुपं हस्तकोमलत्वं सार्थत्वं व्रजति । भवन्नेत्रयुगस्य क्रीडाभवनं तावन्मम शरीरं सार्थमेव । किं बहुनोक्तेन, भवताऽहं सार्था कृतार्था च विहिता । अत्र नायिकायां हर्षाख्यव्यभिचारिभावस्याङ्गत्वेन स्थितत्वात्प्रियतमस्य प्रियोक्तेश्च प्रेयो नामाऽलङ्कारो भवितुमर्हति । अत्र शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्, लक्षणं पूर्वमेवोक्तम् ।। ३१ ।।

"उपमानोपमेययो"रिति क्रमोक्तिर्लक्ष्यते । यत्रोपमानोपमेययोः क्रमेण वर्णनं स्यात्तत्र क्रमोक्तिरलङ्कारो भवेत् । अस्यालङ्कारस्य नाम वामनाचार्येण क्रम इति विहितम्—"उपमेयोपमानानां क्रमसम्बन्धः क्रमः ।"[५] ततः परवर्तिन आचार्या इममलङ्कारं यथासङ्ख्यमिति नाम्ना ब्रुवन्ति । यथोक्तमलङ्कारसर्वस्वे—"अन्ये त्विममलङ्कारं क्रमसञ्ज्ञयाऽभिदधिरे ।"[६] किन्तु यथासङ्ख्य-नामालङ्कारे नोपमानोपमेययोः क्रमेणोक्तिर्भवति, अपितु तत्रोर्ध्वं निर्दिष्टानामर्थानां पश्चान्निर्दिष्टैरर्थैः क्रमेण सम्बन्धो निरूप्यते ।

---

१. अलङ्कारप्रदीपे (विश्वेश्वरपाण्डेयकृते), ११७
२. तत्रैव, ११६
३. काव्यादर्शे, २/२७५
४. अलङ्कारसर्वस्वे, वृत्तौ, पृ० १८६
५. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/१७
६. अलङ्कारसर्वस्वे, वृत्तौ, पृ० १४६

यथोक्तमलङ्कारसर्वस्वे—"उद्दिष्टानामर्थानां क्रमेणानूद्देशो यथासङ्ख्यम् ।"[१] मम्मटादयस्तु कथयन्त्येवमेव । उदाहरणेऽत्र कश्चिन्नायको ब्रूते—हे मृणालमध्ये ! उपवनमनुप्रयाणशीलायास्तव नयनकलध्वनिकेशानां पेशलत्वं तावत् क्रमेण मृगशिशुकलकण्ठनीलकण्ठैर्हा ! चोरितम् । अत्र श्लोक उपमानानां क्रमेणैवोपमेयपदान्युक्तानि । अतः क्रमोक्तिरलङ्कारः । अत्र पुष्पिताग्रावृत्तम्, लक्षणमुक्तं प्रागेव ।। ३२ ।।

'किञ्चित्कार्यं कर्तुमारभमाणस्ये"ति समाहित लक्ष्यते । यत्र किञ्चित्कार्यं कर्तुं प्रवर्तमाने सति भाग्यात्तत्साधनसम्प्राप्तिश्चेज्जायते तत्र समाहिताऽलङ्कारः स्यात् । समाहितेऽलङ्कारे भावस्य कस्यचिच्छान्तिरुच्यते । त्रिमल्लभट्टस्याऽयमलङ्कारो मम्मटादीनां समाध्यलङ्कारेण सङ्गच्छते । यथोक्तं मम्मटेन—"समाधिः सुकरं कार्यं कारणान्तरयोगतः"[२] । वामनाचार्योऽस्य लक्षणं पृथगेव निर्दिष्टवान्—"यत्सादृश्यं तत्सम्पत्तिः समाहितम्"[३] । एतत्तु तावदन्यदेव । किन्तु दण्डी त्रिमल्लभट्टसदृशमेव समाहितालङ्कारं लक्षितवान्—"किञ्चिदारभमाणस्य कार्यं दैववशात्पुनः । तत्साधनसमापत्तिर्या तदाहुः समाहितम्"[४] । कस्यचिन्नायकस्योक्तिरस्ति यद् हारकङ्कणकेयूराभूषणानि मानिन्यै नायिकायै मोदाय प्रयच्छतो ममैव भाग्याद् रमणीयकण्ठात्कलध्वनिर्जातः । अत्र मानापहरणार्थं नायिकायै भूषणानि ददतो नायकस्य भाग्येन जातकलकण्ठमधुरध्वनित्वेन मानापहरणसाधनत्वप्राप्तेः समाहिताऽलङ्कारः । मानिन्या नायिकायाः कोपभावस्य शान्तेरपि समाहिताऽलङ्कारोऽत्राऽभ्युपगन्तव्यः कोपाख्यभावप्रशमस्याऽङ्गत्वाद्, यथोक्तम्—"भावशान्तिः पराङ्गत्वे समाहितम् ।"[५] अत्रानुष्टुभ् वृत्तम्, लक्षणमुक्तं पूर्वमेव ।। ३३ ।।

"उत्कर्षगुणैः स्तुतिनिन्दार्थे" त्यादिना तुल्ययोगितां लक्षयति । उत्कर्षाधायकैर्गुणैर्यत्र स्तुत्यर्थकीर्त्तनं निन्दार्थकीर्त्तनं वा स्यात्तत्र तुल्ययोगिताऽलङ्कारो मन्यते । एतत्तुल्ययोगिताऽलङ्कारलक्षणं समेषामाचार्याणां मतेन सह विरोधित्वं धत्ते । आचार्यवामनो मनुते यद् विशिष्टेन न्यूनस्य साम्यार्थं चेदेककालायां क्रियायां युज्यते तर्हि तुल्ययोगिताऽलङ्कारो भवति—"विशिष्टेन साम्यार्थ-

---

१. तत्रैव, सूत्रे, पृ० १४८

२. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, १९२ सूत्रम्

३. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/२९

४. काव्यादर्शे, २/२९८

५. अलङ्कारप्रदीपे, सूत्रम् ११८

मेककालक्रियायोगस्तुल्ययोगिता ।"[1] अलङ्कारसर्वस्वे कथितं यदि वाच्यप्रयोगे त्वौपम्यस्य गम्यत्वे सति प्राकरणिकानामप्राकरणिकानां वा पदार्थगतत्वेन समानगुणक्रियासम्बन्धे सति तुल्ययोगितालङ्कारो भवति "औपम्यस्य गम्यत्वे पदार्थगतत्वेन प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां वा समानधर्माभिसम्बन्धे तुल्ययोगिता ।"[2] एवमेव मम्मटेनापि भणितं यद् प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां वा चेदेकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तर्हि तुल्ययोगिता भवेत्—"नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता ।"[3] एवं त्रिमल्लभट्टस्य तुल्ययोगितालक्षणं क्वचिदपि न सङ्गच्छतेऽखिलकाव्यालङ्कारशास्त्रविरोधित्वात् । कस्याश्चिन्नायिकाया वर्णनमेवं क्रियते यत्—चन्द्रसहस्रपत्रकमलानि तव मुखं दधति, कण्ठहारबद्धाम्बुजसन्नद्धोरोजसरोजानि चाऽतिशीतलं कञ्चुकं धारयन्ति । एवमत्र 'दधति' पदेनैकधर्माभिसम्बन्धत्वात्तुल्ययोगिताऽलङ्कार. । किञ्चाऽत्र न खलु शरीरं तावदस्या रमण्या मुखं कञ्चुकं च धारयति नायिकायाः शरीरस्याऽसामर्थ्यान्निन्द्रार्थप्रतीतेः । मुखकण्ठकुचानां सौन्दर्यातिशयात्स्तुतिवचनं तावदभिहितमित्यत्र तुल्ययोगितालङ्कारः । अत्राऽनुष्टुभ् वृत्तम्, लक्षणमुक्तं प्रागेव ।। ३४ ।।

"लेशसम्भिन्नमर्थे" त्यादिना लेशो लक्ष्यते । लेशेन सम्भिन्नोऽर्थो यत्र गोप्यते तत्र लेशाख्योऽलङ्कारः स्यात् । अस्यालङ्कारस्य विषये रुद्रटः प्राह— "दोषीभावो यस्मिन् गुणस्य वा गुणीभावः । अभिधीयते तथाविधकर्मनिमित्तः स लेशः स्यात् ।"[4] अस्याशयो वर्तते यद् यत्र गुणस्य दोषत्वं दोषस्य च गुणत्वं विधीयते, एतादृशं कर्म चेत्कारणत्वेन निमित्तत्वेन वोच्यते तत्र लेशो नामाऽलङ्कारः । यथोक्तमलङ्कारप्रदीपेऽपि—"दोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनं लेशः ।"[5] अन्य आचार्याः प्राय इममलङ्कारं नोदाहरन्ति । लेशसम्भिन्नत्वादर्थस्य यत्र गोपनं विधीयते तत्र तद्दोषभूतस्याऽर्थस्य गुणत्वं गुणभूतस्याऽर्थस्य च दोषत्वमप्युच्यते । यथोदाहृतं यत् प्रस्वेदादिना रोमाञ्चितो विघूर्णितविकसन्नेत्रपुण्डरीकः श्रीपतिः कृष्णो बन्धूनां पार्श्वे हरिणाक्षीं गोपाङ्गनां चञ्चलकुन्तलां त्ववलोक्य वाहूच्चैः कृत्वाऽऽन्तरिकं कामभावं सङ्गोप्य तावदकथयत्—आः ! चण्डरुचिः सूर्यः किमङ्गारानुत्स्रष्टुमुत्कण्ठते । अत्र कुरङ्गाक्षीं लोलालकां नायिकां दृष्ट्वा न लेभे कृष्ण आह्लादकत्वमपितु वह्निशकलवर्षण-

---

१. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/२६

२. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० ७०

३. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, सूत्रम् १५८

४. काव्यालङ्कारे (रुद्रटकृते), ७/१००

५. अलङ्कारप्रदीपे (विश्वेश्वरपाण्डेयकृते), सूत्रम् १०२

सम्प्राप्तिस्तेनाऽनुभूयते। एवं कुरङ्गाक्षिदर्शनजन्याह्लादकत्वगुणस्याऽत्र दोषत्व-मुपकल्पितम्। अत एवाऽत्र लेशो नामाऽलङ्कारः। अत्र शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्, लक्षणमुक्तं प्रागेव ॥ ३५ ॥

"उपमानोपमेयसंशय" इति संशयो लक्ष्यते। यत्रोपमेयस्योपमानेन सह संशयात्मकं ज्ञानं प्रतीयते तत्र संशयनामाऽलङ्कारो भवति। क्वचित्तूपमाने स्यादुपमेयस्य संशयप्रतीतिरिति। रुद्रटोऽस्याऽलङ्कारस्य लक्षणमेवं ब्रूते— "वस्तुनि यत्रैकस्मिन्ननेकविषयस्तु भवति सन्देहः। प्रतिपत्तुः सादृश्यादनिश्चयः संशयः स इति ॥"[1] वामनेन तु संशयोऽलङ्कारः सन्देह इति नाम्ना स्मर्यते, तेनोच्यते यदुपमानोपमेययोश्चेदतिशयार्थं यः संशयः क्रियते स सन्देहाऽलङ्कारो वर्तते। उक्तं यथा "उपमानोपमेयसंशयः सन्देहः।"[2] प्रकृतोऽर्थो यत्र संदिह्यते तत्रैव सन्देह इति रुय्यको ब्रवीति—"विषयस्य सन्दिह्यमानत्वे सन्देहः।"[3] मम्मटोऽलङ्कारमिमं ससन्देह इति नाम्ना ब्रवीति। प्रायोऽन्य आचार्या अलङ्कारमिमं सन्देहमिति मन्यन्ते। प्रायोऽस्मिन्नलङ्कारे सादृश्य-निबन्धनात्मकप्रकृतसंशयत्वात्सन्देहो दृश्यते। यथोक्तमलङ्कारप्रदीपे— "सादृश्यनिबन्धनः प्रकृतसंशयः सन्देहः।"[4] उदाहरणेऽत्र कश्चिन्नायको नायिकां कथयति यद् हे तन्वङ्गि! इदं ते मुखमस्ति उत चन्द्रबिम्बमिति निश्चेतुं तवैव प्रसादभाजोऽहं भवितुमिच्छामि। मम बुद्धिस्त्वत्र न प्रभवति। अत्र मुख उपमेये चन्द्रबिम्बस्योपमानस्य संशयत्वात्संशयोऽलङ्कारः। अत्रानुष्टुभ्वृत्तम्, लक्षणमुक्तं पूर्वमेव ॥ ३६ ॥

"एकस्यैवोपमानोपमेयत्वे" त्यादिनाऽनन्वयं लक्षयति। यत्रैकस्मिन्नेव वस्तुनि कल्पत उपमानत्वमुपमेयत्वञ्चाऽथवोपमेय एव उपमानत्वं भजते यत्र, तत्र स्यादनन्वयः। एवमेवोक्तं वामनेन—"एकस्योपमेयत्वोपमानत्वेऽनन्वयः।"[5] अलङ्कारसर्वस्वेऽप्युक्तमेवमेव—"एकस्यैवोपमानोपमेयत्वेऽनन्वयः।"[6] अल-ङ्कारेऽत्रोपमेयस्योपमानान्तरस्याऽशक्यत्वादुपमेय एवोपमानतां बिभ्रति। एव-मुपमानान्तरसम्बन्धाभावादनन्वयो भवति। मम्मटाचार्योऽपि ब्रवीति—

---

१. काव्यालङ्कारे (रुद्रटकृते), ८/५९
२. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/११
३. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० ४२
४. अलङ्कारप्रदीपे (विश्वेश्वरपाण्डेयकृते), सूत्रम् ८
५. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/१४
६. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० ३०

"उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैकवाक्यगे । अनन्वयः ।"[1] उदाहरणेऽत्र कश्चिन्नायको नायिकां वदति—हे सुनितम्बिनि ! तव मुखं मुखतुल्यं लोचनञ्च लोचनसदृशं वेणी वेणीव जघने च जघनस्थल इव तावद् वर्तन्ते । अत्रोपमेयानां कृत उपमानान्तराभावादुपमेयस्यैवोपमानाप्तिवचनाच्चाऽनन्वयोऽलङ्कारोऽस्ति । अत्रानुष्टुभ्वृत्तम्, लक्षणं कथितमेव ।। ३७ ।।

"एकस्यार्थस्ये" त्यादिनोपमेयोपमा लक्ष्यते । एकस्यार्थस्य क्रमेण चेद् यत्रोपमेयत्वमुपमानत्वञ्च कल्प्यते आशयोऽयमस्ति यदुपमेयोपमानयोः परस्परं क्रमेणोपमानोपमेयत्वेन यत्राभिधानं स्यात्तत्रोपमेयोपमाऽलङ्कारो वर्तते । उक्तं यथा वामनेन—"क्रमेणोपमेयोपमा ।"[2] अपि चोक्तं रुय्यकेन—"द्वयोः पर्यायेण तस्मिन्नुपमेयोपमा ।"[3] उपमानोपमेययोर्यत्र परस्परं परिवर्त्तनं क्रियते तत्रोपमेयोपमा भवति । यथा कथितं मम्मटेन—"विपर्यास उपमेयोपमा तयोः ।"[4] अस्यालङ्कारस्यविषये न काचिद्विप्रतिपत्तिराचार्याणां दृश्यते । अस्योदाहरणं दीयते त्रिमल्लभट्टेन यन्मृगाक्षीयं नायिका कनकलतातुल्या शोभते कनकलता च मृगाक्षीव विभाति । अपि च तन्वङ्ग्या नयनं नीलकमलसदृशं नीलकमलञ्च नयनमिव शोभतेतराम् । अत्रोपमानोपमेययोः परस्परं विपर्यासादुपमेयोपमाऽलङ्कारः स्यात् । अत्राऽऽर्यावृत्तम्, लक्षणमुक्तं प्रागेवाऽन्यत्र ।। ३८ ।।

"नानालङ्कारसंसृष्टि" रिति सङ्कीर्णं लक्षयति । अनेकेषामलंकाराणां मिश्रत्वं चेत्स्यात्तर्हि तत्र सङ्कीर्णाख्योऽलङ्कारः । अन्ये काव्यशास्त्रिणः प्राय इममलंकारं संसृष्टिनाम्ना ब्रुवन्ति । यथोक्तं वामनेन—'अलङ्कारस्याऽलङ्कारयोनित्वं संसृष्टिः ।'[5] अलङ्काराणां निरपेक्षभावात्तिलतण्डुलन्यायेन मिश्रत्वं संसृष्टिसञ्ज्ञमलंकारं जनयति, किन्तु सापेक्षभावेनाऽलङ्काराणां नीरक्षीरन्यायेन स्थितेः सङ्कराख्योऽलंकारः स्यात् । यथोक्तं रुय्यकेण—"एषां तिलतण्डुलन्यायेन मिश्रत्वं संसृष्टिः ।"[6] "नीरक्षीरन्यायेन तु सङ्करः ।"[7] शब्दार्थयोरुभयोरलंकारयोरेतल्लक्षणस्य सम्प्राप्तेरुभयालङ्कारोऽयं मन्यते किन्त्वत्राऽर्थालङ्काराणामेव

---

१. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, सूत्रम्, १३५
२. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४/३/१५
३. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० ३१
४. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, सूत्रम्
५. काव्यालङ्कारसूत्रे, ४।३।३०
६. अलङ्कारसर्वस्वे, पृ० १९२
७. तत्रैव, पृ० १९७

वर्णनाद् ग्रन्थेऽस्मिन् सङ्कीर्णालङ्कारोऽर्थालङ्कारत्व एव पर्यवस्यति । मम्मटादयस्तु संसृष्टिनाम्नैवाऽलङ्कारमिमं स्वीकुर्वन्ति । उदाहरणेऽत्र नायको नायिकां ब्रूते— हे तन्वि ! चलकटाक्षेण चञ्चलनयनं सस्मितं मुखं तावच्चन्द्रं दूरीकरोति । अतिवलेशेन यशसा विजितभूमण्डलान्तरस्याऽस्य प्रथितस्य तव कौमुदी-जयविधौ कः समर्थो वर्तते । न कोऽपीत्यर्थः । अत्र श्लोकपूर्वार्द्धे तूपमानस्य शशिनोऽनुत्कर्षत्वाद् व्यतिरेकोऽलंकारः । उत्तरार्द्धे च भूमण्डलस्य विजयहेतुत्वेन यशसः कथनाद् हेत्वलङ्कारोऽखिलभूवलयस्य विजयशीलत्वेऽपि कौमुदीजय-विधावसामर्थ्यादतिशयोक्तिरलङ्कारः । अपि च श्लोकस्य द्वितीयचरणे चाऽक्षरावृत्त्या वृत्त्यनुप्रासः शब्दाऽलङ्कारो दृश्यते । एतेषां सर्वेषामलङ्काराणामत्र संसृष्ट्या संकीर्णालङ्कारो वर्तते । अत्र वसन्ततिलकावृत्तम् । लक्षणमुक्तं यथा— "उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" इति ।। ३९ ।।

"गम्भीरस्य वस्तुन" इत्यादिना भाविकं लक्षयति । गम्भीरस्य वस्तुनो भावानां कथनं स्याद् भाविकाऽलङ्कारः । यत्रातीतानागतयोर्भूतभाविनोरर्थयोर-लौकिकत्वेन प्रत्यक्षायमाणं यद् वर्णनं क्रियते तद् भाविकम् । उक्तं यथाऽलंकार-सर्वस्वे—"अतीतानागतयोः प्रत्यक्षायमाणत्वं भाविकम् ।"[1] अपि चोक्तं काव्य-प्रकाशकारेण—"प्रत्यक्षा इव यद्भावाः क्रियन्ते भूतभाविनः । तद् भाविकम् ।"[2] प्रबन्धगतत्वेनाऽयमलंकारो भामहोद्भटदण्डिभिर्मन्यते । उदाहरणं तावद् वर्तते-हे मनोहरणि ! सुन्दरि ! श्रीकृष्णः सकलनयनमीनामृतं यमुनानद्याः पुलिनं गच्छति इति कयाचिन्नायिकया गोप्या वा निवेदिते सति व्रजमार्गान्तराले मुहुर्मुहुः सखि ! हे सखि । त्वरितमेव यमुनातटं चलतु चलतु इति कोलाहलो महानुदतिष्ठत् । अत्र गम्भीरार्थस्य भावस्य वर्णनाद् भाविकोऽलङ्कारः । भावि-केऽद्भुतभावोक्तिवर्णनं दृश्यतेऽत्राप्याश्चर्यमेव यत्सर्वा गोप्यो यमुनापुलिनं प्रयातुमुत्कण्ठन्ते । उक्तं यथा—"प्रत्यक्षा इव यत्रार्था दृश्यन्ते भूतभाविनः । अद्भुताः स्यात्तद्वाचामनाल्कूयेन भाविकम् ।"[3] किन्तूदाहरणेऽस्मिन् न भूत-भाविनोऽर्थस्य विशेषप्रत्यक्षीकरणं तावद् दृश्यते । अस्यालङ्कारस्य लक्षण-मलङ्कारप्रदीपेऽप्युक्तम्—"भूतभाविविशेषप्रत्यक्षं भाविकम् ।।"[4] न त्विमल्ल-

---

१. तत्रैव, पृ० १७८

२. काव्यप्रकाशे, दशमोल्लासे, सूत्रम् १७३

३. अलङ्कारसर्वस्वे, विमर्षिणीटीकायाम्, पृ० १७८

४. अलङ्कारप्रदीपे (विश्वेश्वरपाण्डेयकृते), सूत्रम् ४६

भट्टकृतलक्षणमिदमन्येषामाचार्याणां भाविकालङ्कारलक्षणेषु सङ्गच्छतेऽस्य लक्षण-स्याऽन्यरूपत्वात्। अत्र पृथ्वीच्छन्दस्तल्लक्षणं निगदितं प्रागेव ॥ ४० ॥

"अभिलषितशंसने" त्यादिनाऽऽशिषं लक्षयति। अभिलषितस्याऽऽशीर्वा-दस्य यत्र शंसनं क्रियते तत्राऽऽशिषनामाऽलङ्कारो भवितुमर्हति। अस्यालङ्कारस्य-विषये प्रायोऽन्य आचार्या न किमपि कथयन्ति। तेऽलङ्कारस्याऽस्याऽऽशीर्वा-दरूपत्वेन नाऽलङ्कारत्वमस्य स्वीकुर्वन्ति। न चाऽस्मिन् काचिद् भङ्गी-भणितिरेवाऽभिधायास्तावद् दरीदृश्यते। भङ्गीभणितिरूपत्वात्समेषामलङ्काराणां नाऽयमलङ्कारत्वमवाप्नोति। त्रिमलभट्टस्याऽलङ्कारोऽयं सर्वालङ्कारिकाणां वचनविरोधित्वान्नाङ्गीकर्तुं शक्यः। किन्त्वत्रैतद्वचनमेव प्रमाणं मत्वा स्वीक्रियते तावदयमलङ्कार इति। उदाहरणेऽत्र काचित्सखी नायिकां ब्रूते—हे कुन्दकलिका-रदने। यावत्तव प्रिय आगच्छति तावत्तेऽङ्गानि गङ्गापतिः शिवोऽनङ्गाद् रक्षतु। अत्र 'तवाङ्गानि शिवो रक्षतु' इति कथनेनाऽभिलषितशंसनरूप आशीर्वादः प्रदत्तः। एतस्मादत्राशिषाख्योऽलङ्कारो वर्तते। अत्रानुष्टुभ् वृत्तम्, तल्लक्षणमुक्तं पूर्वमेव ॥ ४१ ॥

अथ ग्रन्थेऽस्मिन् वर्णितोऽलङ्कारसमूहो हि तावन्मुख्यतां भजतेऽन्ये येऽलङ्काराः खलु वर्णितास्ते वैकल्पिका एव। एतेभ्यो वर्णितेभ्योऽलङ्कारेभ्यो जातास्तेऽलङ्कारा अन्याचार्यैर्वर्णिता अत्र न चर्चितास्तेषां वर्णितेष्वेवाऽलङ्का-रेष्वन्तर्भूतत्वात्। मुख्यत्वेन कीर्त्तिता अलङ्काराः प्राधान्येनात्र लिखिता नाऽत्राऽप्रधानास्तद्भेदोपभेदाश्च चर्चिताः ॥ ४२ ॥

काश्यां वसता वल्लभभट्टस्याऽऽत्मजेन त्रिमल्लभट्टेनेयं रमणीया कलुषरहिता निर्मलाऽलङ्कारमञ्जरी निरमायि। निर्मलत्वेनाऽत्र दोषरहितत्वं रम्यत्वेन च गुणत्वमित्यवगन्तव्यम्। दोषरहितगुणोपेताऽलङ्कारमञ्जरीति कथनेनाऽलङ्कार-काव्यत्वापत्तेर्ग्रन्थस्याऽस्य रामणीयकं स्वयमेव विजृम्भत इति ॥ ४३ ॥

काव्यालङ्कृतिकामिनीमुखसुधापानैकवाञ्छावताम्
अर्थालङ्कृतिझङ्कृतौ सहृदयानां नृत्यमोदाय च ॥
गुञ्जन्तीं 'भ्रमरीं' 'बृजेश'-लिखितां सम्प्राप्य टीकां मधौ
सार्थाऽभूच्च 'त्रिमल्लभट्ट'रचिता'ऽलङ्कारमञ्जर्यहो ॥

इति श्रीत्रिमल्लभट्टविरचिताया अलङ्कारमञ्जर्या
बृजेशकुमारशुक्लप्रणीता 'भ्रमरी'—टीका
समाप्ता।

श्रीत्रिमल्लभट्टविरचिता
अलङ्कारमञ्जरी
हिन्दीअनुवाद

मैं कपोलों पर लटकते भ्रमर-मण्डल के कोलाहल से आकुल, पार्वती ही जिनके अनुरागातिशय का आलम्ब है, ऐसे लम्बोदर गणेश के मुख का आश्रय लेता हूँ ।। १ ।।

जो अल्प श्रवण (अल्प प्रयास) के द्वारा अलङ्कारों को जानना चाहते हैं, वे कर्णों के आभूषण-स्वरूप इस 'अलङ्कार-मञ्जरी' को दोनों कानों के ऊपर लगायें ।। २ ।।

स्वभावोक्ति, उपमा, रूपक, दीपक, अतिशयोक्ति, समासोक्ति, वक्रोक्ति, सहोक्ति, पर्यायोक्ति, विशेषोक्ति, व्यतिरेक, विभावना, आक्षेप, उत्प्रेक्षा, उदात्त, अपह्नुति, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, आवृत्ति, व्याजस्तुति, निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा, परिवृत्ति, विरोध, हेतु, सूक्ष्म, रसवद्, ऊर्जस्वी, प्रेय, क्रम, समाहित, तुल्ययोगिता, लेश, संशय, अनन्वय, उपमेयोपमा, सङ्कीर्ण, भाविक तथा आशिष ये मुख्य अलङ्कार हैं। अन्य (अलङ्कार) उनके भेद हैं, वे (अलङ्कार) क्रमशः उदाहृत किये जाते हैं—

१. **स्वभावोक्ति**—स्वभाव (वस्तु का स्वाभाविक) कथन (चित्रण) स्वभावोक्ति अलङ्कार कहलाता है। यथा—

लटकते हुए चञ्चल केशों के जल-बिन्दुओं से विगलित चन्दन के बिन्दुओं से स्फुरित मुखचन्द्र में चमकते हुए नेत्रों की लालिमा से अलङ्कृत वस्त्राञ्चल को हिलाती हुई, मुख को झुकाए हुए अतएव श्लिष्ट स्निग्ध चोली के अन्तर्गत स्तनों को दिखाते हुए, क्षीण उदर वाली राधिका यमुना के जल से पुलिन-प्रदेश (तट) को जा रही है ।। ३ ।।

यहाँ यमुना-जल में स्नात राधिका के गमन का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

२. **उपमा**—(वस्तु के) किसी एक देश के साम्य का अवलम्बन करके जहाँ न्यूनगुण (वाली वस्तु) अधिक गुण (वाली वस्तु) के साम्य को लाया जाय तो वह उपमा अलङ्कार कहा जाता है। जैसे—

श्रीकृष्ण का अवलम्बन लेने वाली, स्तनों के भार से आक्रान्त राधा वृक्षसङ्गिनी (वृक्ष पर चढ़ी हुई) पुष्प गुच्छों से झुकी लता जैसी सुशोभित होती है ।। ४ ।।

यहाँ राधा का साम्य लता से किया गया है, अतः उपमा अलङ्कार है।

३. **रूपक**—वह 'इव' आदि (सादृश्यवाची) शब्दों के द्वारा (उपमान-उपमेय में) भेद-रहित उपमा रूपक अलङ्कार कहा जाता है। जैसे—

मुखचन्द्रमा, दोनों नेत्र नीलकमल, वाणी अमृत की परम्परा, मुस्कान चन्द्रमा की किरण, भौंह कामदेव के धनुष् तथा स्तन किशोर हाथी के कुम्भस्थल हैं। जिस (नायिका) का यह सब अद्भुत है, वह संसार को मोहित करने वाली (नायिका) उत्कर्ष को प्राप्त हो रही है ।। ५ ।।

यहाँ उपमान उपमेय में अभेदारोप से रूपक अलङ्कार है।

४. **दीपक**—आदि, मध्य तथा अन्त के स्थानभेद से एक ही क्रिया जहाँ सम्पूर्ण वाक्यार्थ को उद्दीपित करती है, वहाँ दीपक अलङ्कार होता है। यथा—

सरोवर में कमलों के मध्यस्थ भ्रमरों के द्वारा मधु, कामियों के द्वारा पूर्ण कमल-सदृश नेत्रों वाली रमणियों के स्वेदयुक्त कपोल तथा बिम्बफल सदृश अधर, सुदृढ आत्मवान् युवकों के कर्णों के द्वारा कोयल की काकली कलरव तथा डटे हुए हरिण-शिशु के सदृश नेत्रों वाली नायिकाओं की दृष्टियों से नायकों के मुख-चन्द्र पिये जा रहे हैं ।। ६ ।।

यहाँ आदि में स्थित 'पीयन्ते' इस एक क्रिया पद के द्वारा सम्पूर्ण (कई कारकों वाला) वाक्यार्थ अन्वित होता हैं, अतः यहाँ दीपक अलङ्कार है।

५. **अतिशयोक्ति**—विशिष्ट अर्थ की विवक्षा से जहाँ लोकसीमा का उल्लङ्घन करने वाली क्रिया प्रतिपादित की जाय, वहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है। जैसे—

नीलकमल पंखुड़ियों के द्वारा निर्मित माला कण्ठरूपी नाल में धारण की, दोनों कानों में नील कमल तथा नेत्रों में अञ्जन लगाया, नील वस्त्र धारण किया और कस्तूरी रस से अङ्गराग किया; इतने पर भी कामदेव यदि अग्रसर न हुआ, तो वह नायिका किस प्रकार नायक के प्रति अभिसार करे॥ ७॥

यहाँ नील-कमल की माला तथा कर्णावतंस, अञ्जन, नील वस्त्र के धारण और कस्तूरी से अङ्गराग करने पर भी कामदेव अग्रसर न हुआ, इस लोकमर्यादा के उल्लङ्घन का वर्णन होने से अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

६. **समासोक्ति**—किसी वस्तु को उपलक्षित करके उसी के समान वस्तु का वर्णन समासोक्ति अलङ्कार कहा जाता है। जैसे—यहाँ अपनी नायिका को छोड़कर उस समय अन्य नायिका के प्रति गमन करने वाले नायक से दूती के वचन हैं—

हे भ्रमरेश ! यहाँ कुन्द पुष्प में स्वल्प भी मकरन्द की बूँद श्रेष्ठ है। मत जाइये, वहाँ रात्रि है, कमल में मकरन्द सुलभ नहीं हैं॥ ८॥

यहाँ भ्रमर को लक्षित करके नायक के प्रति दूती के वचन कहे गये हैं, अतः उक्त लक्षण के अनुसार समासोक्ति अलङ्कार है।

७. **वक्रोक्ति**—सादृश्य-मूलक लक्षणा वक्रोक्ति अलङ्कार कहलाती है। अर्थात् अभिधेयार्थ का बाध होने पर किसी प्रयोजन से तत्सम्बद्ध सादृश्य-मूलक अर्थ जहाँ प्रतीत होता है, वहाँ वक्रोक्ति अलङ्कार होता है। यथा—

उच्च कादम्ब-युगल में आकाश गङ्गा प्रवाहित हो रही है, अन्धकार चन्द्र-मण्डल को निगल रहा है और चञ्चल तारा सुन्दर धारा को शीघ्रता से वमन कर रही है। अहो ! कामदेव की यह अपर सृष्टि अत्यन्त धन्य है॥ ९॥

यहाँ 'गगन-गङ्गा' आदि का अभिधेयार्थ बाधित होकर लक्षणा शक्ति से उसी के समान अन्य अर्थ की प्रतीति इस प्रकार होती है—"नायिका के

उच्च स्तन युगल पर श्वेत मणिमाला तरलता को प्राप्त हो रही है, श्यामल (कृष्ण) केश मुखचन्द्र को ढक रहे हैं। चञ्चल नेत्रों की पुतली सुन्दर कटाक्ष धारा को उगल रही हैं। अहो! यह कामदेव की रमणीरूपा सृष्टि, विधाता की सृष्टि से भिन्न, अत्यन्त धन्य है।"

इस प्रकार यहाँ वक्रोक्ति अलङ्कार है।

८. **पर्यायोक्ति**—इष्ट अर्थ को बिना कहे हुए उसके लिए प्रकारान्तर से कथन करना पर्यायोक्ति अलङ्कार कहलाता है। जैसे—

हे कृष्ण! कामदेव रूपी वृक्ष की मञ्जरी, चकित खञ्जन पक्षी के सदृश नेत्रों वाली कोई नायिका अभी शीघ्र ही लतागृह में प्रविष्ट ही हुई है। हे आर्य! सुन्दर! तुम भी तुरन्त वहीं चले जाओ। मैं भी कोयल तथा कबूतर के कोलाहल का निवारण नहीं कर रहा हूँ ॥ १० ॥

उपर्युक्त उदाहरण में कोयल तथा कबूतर के कोलाहल का निवारण न करने से कामोद्दीपन होगा। यह अभिप्राय प्रकारान्तर से कहा गया है अथवा 'नायिका के सम्भोग में कङ्कणकिङ्किणी आदि आभूषण की झङ्कार तथा नायिका का सीत्कार कोई न सुन सके, अतः पिक, कपोत का कोलाहल नहीं निवारित किया जा रहा है' यह अर्थ भी यहाँ व्यक्त होता है। इसलिए पर्यायोक्ति अलङ्कार है। इसका दूसरा नाम पर्यायोक्त भी हैं।

९. **विशेषोक्ति**—गुण, जाति तथा क्रिया के भेद से जहाँ वैकल्प्य का दर्शन कराया जाय, वहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार होता है। यथा—

यह कामदेव का बाण भी नहीं है और नवीन आम्र की मञ्जरी भी नहीं है फिर भी चञ्चल नेत्र वाली रमणी के कटाक्ष का विक्षेप चित्त को व्यथित कर रहा है।

यहाँ कामदेव के बाण तथा आम्र-मञ्जरी के गुण चञ्चल नेत्र वाली नायिका के कटाक्षों में स्थित हैं। अतः यहाँ गुणभेद से वैकल्प्य दिखाने के कारण विशेषोक्ति अलङ्कार है।

१०. **सहोक्ति**—दो अथवा दो से अधिक भावों (पदार्थों) का एक साथ कथन सहोक्ति अलङ्कार कहा जाता है। यथा—

मेरे सन्ताप के साथ पर्याप्तरूपेण चन्द्रमा उदित हो रहा है। अश्रु-धाराओं के साथ वायु अत्यधिक बह रही है। कर्ण-ज्वर के साथ कोयल कल-

कल की ध्वनि का विस्तार कर रही है। तुच्छ विषम मूर्च्छा के साथ रात्रि भी व्यतीत हो रही है ॥ १२ ॥

यहाँ 'सह' शब्द के द्वारा दो भावों में एकत्वापत्ति होने से सहोक्ति अलङ्कार है।

११. **व्यतिरेक**—सादृश्य को प्राप्त दो वस्तुओं के भेद का कथन व्यतिरेक अलङ्कार कहलाता है। जैसे—

सचमुच ही नीलकमल के नेत्रों वाली नायिका के तुल्य स्वर्णलतिका फल के भार से विनम्र अङ्गों वाली है, परन्तु यह चेतना से रहित है ॥ १३ ॥

यहाँ नायिका तथा लता में सादृश्य होने पर भी लता में गतचेतनत्व का कथन दोनों में भेद का प्रतिपादक है, अतः उक्त लक्षणानुसार यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है।

१२. **विभावना**—जहाँ प्रसिद्ध कारण का निराकरण (निषेध) करके स्वाभाविक कारण विभावित किया जाता है, वहाँ विभावना अलङ्कार होता है। यथा—

हे काम-तरङ्गिणि ! नायिके ! तुम्हारे अरञ्जित अधरतल रक्त हैं, अञ्जन-रहित नेत्र कृष्णकान्ति वाले हैं तथा बिना सुगन्धि के मुख मधुर और पर्याप्त सुन्दर हैं ॥ १४ ॥

यहाँ रञ्जन, अञ्जन इत्यादि प्रसिद्ध कारण का निषेध करके स्वाभाविक रूपेण अधरों की लालिमा तथा नेत्रों की कालिमा आदि का कथन होने से विभावना अलङ्कार है।

१३. **आक्षेप**—उक्ति के निषेध का कथन आक्षेप अलङ्कार कहलाता है। जैसे—

यमुना के जल में गोपरमणी के पल्लव के समान कोमल अङ्गों के द्वारा कृष्ण भी वशीभूत हो गये। हाय, शिव ! शिव ! संसार में विषय-भोग अत्यन्त दुर्जय हैं ॥ १५ ॥

यहाँ 'शिव-शिव' ऐसा कहकर 'कृष्ण के वशीभूत होने' की शक्ति का प्रकारान्तर से निषेध है, अतः यहाँ आक्षेप अलङ्कार है।

१४. **उत्प्रेक्षा**—अन्य प्रकार से स्थित वृत्ति (व्यापार) को दूसरे

प्रकार से उत्कर्षपूर्वक दिखाकर यदि वर्णन किया जाय तो वहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है।

'मन्ये', 'शङ्के', 'ध्रुवम्', 'प्रायः', 'नूनम्', 'इति', 'एवम्' आदि शब्दों के द्वारा उत्प्रेक्षा व्यञ्जित होता है। 'इव' शब्द भी वैसा (उत्प्रेक्षा व्यञ्जक) ही समझना चाहिए।

यथा—इस संसार में मृगाक्षी नायिका के नेत्रों का कटाक्षपात मानों सचमुच मोहन-वृक्ष के पुष्प हैं। अन्यथा कामदेव को जलाने वाले भगवान् शिव अब भी क्यों पार्वती को धारण करते ।। १६ ।।

यहाँ हरिणाक्षी कामिनी का कटाक्ष पुष्प नहीं हैं तथापि उत्कर्षपूर्वक मोहन-तरु के पुष्प के रूप में चित्रित किया गया है तथा उत्प्रेक्षा-व्यञ्जक 'शङ्के' शब्द का भी प्रयोग है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार है।

१५. **उदात्त**—आश्रय की सम्पत्ति अथवा महत्त्व का वर्णन उदात्त अलङ्कार कहा जाता है। यथा—

स्फटिकमणि से निर्मित सुन्दर स्तम्भ वाले महल के अन्तर्गत शरीर की शोभा स्पष्ट-रूपेण कोटिशः प्रतिफलित होती है। खञ्जन पक्षी के समान नेत्र वाली नायिका का मुख-चन्द्र कृष्ण के देखते हुए देर तक मुस्कराहट से युक्त रहा ।। १७ ।।

स्फटिकमणि से निर्मित सुन्दर स्तम्भ वाली शाला का वर्णन करने से यहाँ उदात्त अलङ्कार है।

१६. **अपह्नुति**—जहाँ अपने अभिप्राय को छिपाकर दूसरे अर्थ (तथ्य) का दर्शन कराया जाय वहाँ अपह्नुति अलङ्कार होता है। जैसे—

हे कुन्द पुष्प के समान सुन्दर दाँत वाली! हे सखि! सचमुच मेरे लिए उच्च स्वर से कोयल की काकली कलरव काल के डमरू की ध्वनि है। चन्दन की सुन्दर विन्दुओं से स्वच्छ चन्द्रमा विष का कन्द है। कुन्द के पुष्प कामदेव के स्फुट बाण हैं। ये सभी अन्यों (संयोगी जनों) के प्रति सौख्य के लिए हैं ।। १८ ।।

यहाँ कोयल की ध्वनि आदि को छिपाकर काल के डमरू की आवाज के रूप में दर्शाया गया है। अतः अपह्नुति अलङ्कार है।

१७. **श्लेष**—जहाँ पर पद (शब्द) अनेक अर्थों में अन्वय के योग्य हो, तो उसे श्लेष अलङ्कार कहा जाता है। जैसे—

अलङ्कार युक्त, सुन्दर अक्षरों वाली, सुन्दर आकारवाली तथा सुन्दर गुणों वाली कविता, रमणी तथा लता किसी धन्य व्यक्ति की है, कौन जानता है ।। १९ ।।

यहाँ कविता, स्त्री तथा लता के पक्ष में श्लोक के पूर्वार्द्ध में उल्लिखित 'अलङ्कार', 'सुवर्ण' आदि के तीन अर्थ होने से श्लेष अलङ्कार है।

१८. **अर्थान्तरन्यास**—कहे गये अर्थ को दूसरे अर्थ से दृढ़ या पुष्ट करना अर्थान्तरन्यास अलङ्कार कहलाता है। यथा—

हे मृगाक्षि ! कानों का चुम्बन करने वाले तुम्हारे नेत्र मन को हरण करते हैं। स्वच्छ होते हुए भी कोई वस्तु कुटिल के सङ्ग से पुरुषों को विकृत करने वाली हो जाती है ।। २० ।।

यहाँ पूर्व कथित अर्थ का उत्तरार्द्ध में कथित अर्थ के द्वारा पुष्टीकरण किया गया है, अतः अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

१९. **आवृत्ति**:—पद अथवा पदार्थ की आवृत्ति हो अथवा दोनों की आवृत्ति हो तो आवृत्ति अलङ्कार होता है। यथा—चञ्चल मृग के समान नेत्रों वाली रमणी अञ्जन के द्वारा नेत्र-युगल को अलङ्कृत करती है। कामदेव पुष्प के बाण से अपने धनुष् को भी आकृष्ट करता है अथवा सुशोभित करता है ।। २१ ।।

यहाँ 'अञ्चति', 'लोचन', 'लोचना', 'धनु', पदों की आवृत्ति से आवृत्ति अलङ्कार है।

२०. **व्याजस्तुति**:—जहाँ निन्दा के बहाने स्तुति की जाती है, वहाँ व्याजस्तुति अलङ्कार होता है। जैसे—कामदेव ने पाँच बाणों से पृथ्वी को जीत लिया। तुमने एक नेत्र-कटाक्ष से पृथ्वी को जीत लिया। यौवन का मद पर्याप्त है ।। २२ ।।

यहाँ कामदेव ने पाँच वाणों से पृथ्वी जीत ली। परन्तु नायिका के एक कटाक्ष से पृथ्वी जीत ली गयी अर्थात् इससे नायिका का परपुरुष-गामित्व सिद्ध होता है, जो निन्दाजनक है। परन्तु कामदेव ने जिस पृथ्वी

को पाँच बाणों से जीता, उसी को नायिका के एक कटाक्ष ने जीत लिया। अतः यहाँ नायिका की स्तुति होने से व्याजस्तुति अलङ्कार है।

२१. **निदर्शन** :—अन्य अर्थ के लिए प्रवृत्त वाक्य के द्वारा जहाँ उसके सदृश फल देखा जाय वहाँ निदर्शन अलङ्कार होता है। यथा–

हे कृशाङ्गि ! यह दक्षिण से चलने वाला वायु प्राणों को आह्लादित करता है। मित्र की कृपा आत्मीय सम्पत्ति का फल है ॥ २३ ॥

यहाँ 'दक्षिण का वायु प्राणों को आह्लादित करता है' इस वाक्य के सदृश फल वाले 'मित्र का अनुग्रह आत्मीय सम्पत्ति का फल है' वाक्य के कथन से निदर्शन अलङ्कार है। इसे रुय्यक तथा मम्मट आदि ने 'निदर्शना' नाम से अभिहित किया है।

२२. **अप्रस्तुतप्रशंसा** :—जहाँ अप्रस्तुत की प्रशंसा की जाय, वहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार होता है। जैसे– किसी विरहिणी का वचन है–

हाय ! शिव ! शिव ! हे सखि ! सुन्दर निकुञ्ज में विचरण करने वाली हरिणी धन्य है, जिसका प्रिय क्षण भर के लिए भी नेत्र-मार्ग से अलग नहीं होता है ॥ २४ ॥

यहाँ अप्रस्तुत हरिणी की प्रशंसा से प्रस्तुत नायिका की क्रियाओं का बोध हो जाता है। अतः अप्रस्तुतप्रशंसा है।

२३. **परिवृत्ति** :—अर्थों का आदान-प्रदान परिवृत्ति अलङ्कार कहलाता है। जैसे–

पति (नायक) हरिणी-सदृश नेत्रों वाली नायिका को हार, केयूर तथा कङ्कण प्रदान करता है और उससे चुम्बन, आलिङ्गन तथा भाषण ग्रहण करता है ॥ २५ ॥

यहाँ हार के लिए चुम्बन, केयूर के लिए आलिङ्गन और कङ्कण के लिए भाषण बदले में दिया गया है। अतः परिवृत्ति अलङ्कार है।

२४. **विरोध** :—जहाँ विशिष्ट अर्थ के दर्शन के लिए पदार्थों का विरुद्ध आचरण तथा संसर्ग दर्शन कराया जाता है वहाँ विरोध अलङ्कार होता है। यथा–

मलयाचल के तट पर पटीर वाटिका से युक्त गाढ़ी सुगन्धि वाली वायु आ रही है। तरुणी के मनः-अन्तराल में सम-विषम प्रलयाग्नि की शङ्का उदित हो रही है ॥ २६ ॥

यहाँ गाढ सुगन्धित वायु का विरुद्ध आचरण दिखाया गया है, अत. विरोध अलङ्कार है।

२५. **हेतु** :--जहाँ कोई तथ्य या वस्तु सकारण वर्णित हो, वहाँ हेतु अलङ्कार होता है। जैसे–

कमलों के विकसित वनों को हिलाकर, मुस्कराहट से स्वच्छ सरोवरों का आस्वादन करके, गुच्छों से युक्त लता वाली लवङ्गलतिका का आलिङ्गन करके वायु हे सखि ! मुझे मारने के लिए आयी है ॥ २७ ॥

यहाँ मुझे वियोगिनी का हिंसनत्व हेतु के रूप में कहा गया है, अतः यहाँ हेतु अलङ्कार है।

२६. **सूक्ष्म** :--जहाँ सङ्केतविशेष अथवा आकार से कोई सूक्ष्म अर्थ जाना जाय, वहाँ सूक्ष्मालङ्कार माना जाता है। यथा--कामदेव की बाधा से खिन्न मन वाले श्रीकृष्ण को गुरुजनों की सभा में देखकर राधा दर्पण-विम्ब को दिखाती हैं ॥ २८ ॥

यहाँ दर्पणविम्ब को दिखाने से गुरुजनों के मध्य रति को छिपाने का सङ्केत रूप अर्थ प्रकाशित होने से सूक्ष्म अलङ्कार है।

२७. **रसवत्** :--जहाँ रस की पेशलता वाक्यार्थ के प्रधान होने पर अङ्ग के रूप से कही जाती है, वहाँ रसवद् अलङ्कार होता है। यथा–

पहले सैकड़ों यज्ञ किये हैं अथवा करोड़ों गायों का दान किया है, अथवा क्या बाल चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करने वाले भगवान् शिव के पद-युगल में अपने मन को समर्पित किया है। नहीं तो शिशु के वितस्ति मात्र परिमाण वाली हरिणी के नेत्रों रूपी कमल वाली तथा ताजे कमल के समान सुन्दर मुख वाली तरुणी कैसे मुस्कराहट के साथ आलिङ्गित होती है ॥ २९ ॥

यहाँ सैकड़ों यज्ञ तथा करोड़ों गायों का दान करने का उल्लेख होने से दानवीररस, चन्द्रशेखर शिव के पद-युगल में मन को लगाने के समुल्लेख से शान्त रस स्फुटित होता है। इस प्रकार वीर तथा शान्त रस अङ्ग के

रूप में उक्त हैं तथा हरिणीनेत्रा, कमलमुखी बाला के आलिङ्गन से सम्भोग श्रृंगार वाक्यार्थ भूत है। अतः यह रसवद् अलङ्कार है।

२८. **ऊर्जस्वी** :––अहङ्कारपूर्वक जहाँ रसाभास तथा भावाभास का निबन्धन किया जाता है वहाँ ऊर्जस्वी अलङ्कार होता है। जैसे–

हे बालमृगाक्षि ! दौड़ते हुए ऊँचे घोड़े के टापों से विदलित पृथिवीतल पर उल्लसित होते हुए धूलि से लथपथ शत्रुओं के वीर-समुदाय रूपी कदली वन के कुन्द के समान अङ्कुरों को क्रोधाक्रान्त श्रेष्ठ बलवान् हाथी के समान पसीने से युक्त उच्च सूँड के समान अपनी भुजाओं से शीघ्र उखाड़ कर तुम्हें देख रहा हूँ, तुम अपने वस्त्राञ्चल को खोल दो ॥ ३० ॥

यहाँ वीररस के अनन्तर सम्भोग श्रृङ्गार का अनौचित्य होने से परकीय नायिका-विषयक प्रेम के निबन्धन से और वस्त्राञ्चल के मोचन की त्वरा-जन्य चिन्ता, क्रोधादि भाव के अनौचित्य से रसाभास तथा भावाभास हैं। रसाभास तथा भावाभास अङ्ग के रूप में स्थित होने से तथा नायक के अहङ्कारयुक्त वचन से यहाँ ऊर्जस्वी अलङ्कार है।

२९. **प्रेय** :—किसी प्रिय भाव का कथन प्रेय अलङ्कार कहा जाता है। यहाँ भाव का अङ्ग के रूप में आख्यान होता है। यथा–

आपके मुख-कमल का पान करने वाली आँखों की विशालता आज सार्थक हो गयी। हे अङ्ग ! आपकी सेवा में जो लोलुप हैं ऐसे हाथों की कोमलता सार्थक है। हे नाथ ! तुम्हारे नेत्र-युगल का केलिगृह मेरा शरीर सार्थक है। अधिक क्या ! पुनः मैं आज पूर्णरूपेण तुम्हारे द्वारा सार्थक तथा कृतार्थ कर दी गयी हूँ ॥ ३१ ॥

यहाँ नायिका में हर्ष नामक व्यभिचारी भाव के अङ्ग रूप से स्थित होने तथा प्रियतम के लिए प्रिय कथन होने से प्रेय नामक अलङ्कार है।

क्रमोक्ति :—उपमान तथा उपमेय का क्रम से जहाँ वर्णन हो, वहाँ क्रमोक्ति अलङ्कार होता है। इसे अन्य आचार्य यथासङ्ख्य अलङ्कार भी कहते हैं। जैसे–

हन्त ! हे मृणाल नाल के समान कृश कटि प्रदेश वाली ! उपवन की ओर प्रयाण करने वाली तुम्हारे नेत्र, मधुर ध्वनि तथा केश की सुन्दरता को मृग, बच्चे के सुन्दर कण्ठ तथा मयूरों ने चुरा लिया है ॥ ३२ ॥

यहाँ उपमान मृग, शिशुकलकण्ठ तथा मयूर के उपमेय नेत्र, कलध्वनि, केश की सुन्दरता का क्रम से वर्णन किया गया है। अतः क्रमोक्ति अलङ्कार है।

३१. **समाहित** :—जहाँ किसी कार्य को करने के लिए उद्यत होने पर दैववश उस कार्य के साधन की सम्प्राप्ति हो जाती है, वहाँ समाहित अलङ्कार होता है। समाहित अलङ्कार में किसी भाव की शान्ति अङ्ग रूप में उल्लिखित होती है। जैसे–

प्रसन्न करने हेतु मानिनी नायिका को हार, कङ्कण तथा बाजूबन्द देते हुए भाग्य से मेरे ही रमणीक कण्ठ की मधुर ध्वनि उत्पन्न हुई ।। ३३ ।।

यहाँ मानिनी के मानापहरण हेतु नायिका को आभूषण प्रदान करते हुए नायक के कण्ठ से निःसृत मधुर-ध्वनि मानापहरण के साधन के रूप में उल्लिखित होने से समाहित अलङ्कार है। यहाँ मानिनी के कोपभाव की शान्ति अङ्गत्वेन कही गयी है।

३२. **तुल्ययोगिता** :—उत्कर्षाधायक गुणों के द्वारा जहाँ स्तुति तथा निन्दा का अर्थ बतलाया जाय, वहाँ तुल्ययोगिता अलङ्कार होता है। जैसे–

चन्द्रमा, सहस्रपत्र तथा कमल तुम्हारे मुख को और कमलों का समूह तुम्हारे अत्यन्त शीतल कञ्चुक को धारण करते हैं ।।३४ ।।

यहाँ नायिका का शरीर मुख और कञ्चुक को धारण नहीं करता है जिससे शारीरिक असामर्थ्य से निन्दार्थ की प्रतीति होती है। इसके अतिरिक्त मुख, कण्ठ तथा स्तनों के सौन्दर्यातिशय से स्तुति का भाव भी है। अतः यहाँ तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

३३. **लेश** :—जहाँ लेश पूर्वक सम्भिन्न अर्थ छिपाया जाता है वहाँ लेश अलङ्कार होता है। अर्थात् जहाँ दोष का गुणीभाव तथा गुण का दोषीभाव बतलाया जाय, उसे लेश अलङ्कार कहा जाता है। यथा—

पसीने के निकलने से रोमाञ्चित, विघूर्णन से सुशोभित नेत्र-कमल वाले भगवान् कृष्ण ने बन्धुओं के समीप चञ्चल केशों वाली कुरङ्गाक्षी गोपिका को देखकर आन्तरिक भाव को छिपाते हुए भुजाओं को ऊपर उठाकर यह कहा—'अरे! क्या प्रचण्ड किरणों वाला सूर्य अग्नि के टुकड़ों को बरसाने के लिए उत्कण्ठित हो रहा है।' ।। ३५ ।।

यहाँ हरिणाक्षी रमणी के दर्शन से आह्लाद उत्पन्न नहीं हुआ, अपितु अङ्गार के बरसने से दुःख हुआ, ऐसा कथन है। अतः यहाँ गुण के दोषीभाव के वर्णन से लेश अलङ्कार है।

३४. **संशय** :—जहाँ उपमेय का उपमान के साथ संशयात्मक ज्ञान हो, वहाँ संशय अलङ्कार होता है। कहीं-कहीं उपमान में उपमेय की संशय प्रतीति होती है। इसे सन्देह अलङ्कार भी कहते हैं। यथा—

हे तन्वङ्गि ! यह तुम्हारा मुख है अथवा चन्द्र-बिम्ब है, ऐसा निश्चय करने के लिए मैं तुम्हारा ही प्रसादभाजन हूँ, मेरी बुद्धि समर्थ नहीं हो रही है ॥ ३६ ॥

यहाँ उपमेय मुख तथा उपमान चन्द्रबिम्ब में संशयात्मक ज्ञान हो रहा है। अतः संशय अलङ्कार है।

३५. **अनन्वय** :—जहाँ एक ही (वस्तु) की उपमान तथा उपमेय के रूप में कल्पना की जाती है, वहाँ अनन्वय अलङ्कार होता है। जैसे—

हे सुश्रोणि ! तुम्हारे मुख के समान मुख, नेत्र के समान नेत्र, वेणी के समान वेणी तथा जघन-स्थल के समान जघन स्थल है ॥ ३७ ॥

यहाँ 'मुख के समान मुख', नेत्र के समान नेत्र' इत्यादि उपमान और उपमेय एक ही वस्तु को कह दिया गया है, अतः अनन्वय अलङ्कार है।

३६. **उपमेयोपमा** :—यदि एक ही पदार्थ क्रमशः उपमेय तथा उपमान के रूप में रखा जाय अर्थात् जहाँ उपमेय और उपमान क्रमशः उपमान और उपमेय के रूप में पुनः स्थापित हों, वहाँ उपमेयोपमा अलङ्कार होता है। जैसे—

मृगाक्षी नायिका स्वर्णलतिका के समान सुशोभित होती है और स्वर्णलतिका मृगाक्षी नायिका जैसी शोभित होती है। तुझ तन्वी के नेत्र नीलकमल जैसे तथा नीलकमल नेत्रों जैसे हैं ॥ ३८ ॥

यहाँ उपमेय और उपमान का क्रमशः उपमान तथा उपमेय के रूप मे कथन किया गया है। अतः उपमेयोपमा अलङ्कार है।

३७. **सङ्कीर्ण** :—यदि अनेक अलङ्कारों का मिश्रण हो तो वहाँ सङ्कीर्ण अलङ्कार होता है। इसे संसृष्टि अलङ्कार भी कहते हैं। यथा—

हे तन्वङ्गि ! चञ्चल कटाक्ष से युक्त तुम्हारे चञ्चल नेत्र और सस्मित मुख, चन्द्रमा को दूर कर देता है अर्थात् तिरस्कृत करता है। क्लेश-पूर्वक यश के द्वारा पृथ्वी-मण्डल के आन्तरिक भाग को जीतने वाले तुम्हारे मुख की दीप्ति (कौमुदी) को जीतने में कौन समर्थ है ॥ ३९ ॥

इस पद्य के पूर्वार्द्ध में उपमान चन्द्रमा का उपमेय मुख से अनुत्कर्ष दिखलाया गया है। अतः व्यतिरेक अलङ्कार है। उत्तरार्द्ध में पृथ्वीमण्डल के विजय हेतु के रूप में यश का कथन होने से हेतु अलङ्कार तथा सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल को जीतने की सामर्थ्य होने पर भी कौमुदी-विजय में असामर्थ्य के कारण अतिशयोक्ति अलङ्कार है। इसके अतिरिक्त द्वितीय चरण में 'च' अक्षर की आवृत्ति से वृत्यनुप्रास अलङ्कार है। इस प्रकार इन सभी अलङ्कारों का मिश्रण होने से सङ्कीर्ण अलङ्कार है।

३८. **भाविक** :—जहाँ गम्भीर वस्तु के भावों का कथन वर्णित हो वहाँ भाविक अलङ्कार होता है। अन्य आचार्यों के अनुसार भूत तथा भविष्यत्कालिक घटनाओं का यदि प्रत्यक्ष जैसा वर्णन किया जाय तो वहाँ भाविक अलङ्कार होता है। जैसे—

हे सुन्दरि ! सुन्दर, सकल नेत्र रूपी मछलियों के लिए अमृत स्वरूप यमुना के तट पर श्रीकृष्ण जा रहे हैं, ऐसा किसी सखी के कहने पर व्रज-वीथियों के मध्य 'हे सखि ! हे सखि ! जल्दी चलो' ऐसा वार-बार कोलाहल हुआ ॥ ४० ॥

यहाँ सभी गोपबालाएँ यमुना-पुलिन पर जाने हेतु उत्कण्ठित हैं, अतः कोई गम्भीर भाव दृष्टिगत होता है। इसलिए यहाँ भाविक अलङ्कार है।

३९. **आशिष** :—अभीष्ट (आशीर्वाद) का जहाँ शंसन किया जाता है, वहाँ आशिष नामक अलङ्कार होता है। यथा—

हे कुन्दकलिका के समान दन्त वाली ! जब तक तुम्हारे प्रियतम आयें, तब तक भगवान् शिव कामदेव से तुम्हारे अङ्गों की रक्षा करें ॥४१॥

यहाँ 'तुम्हारे अङ्गों की रक्षा शिव करें' ऐसा अभिलषित आशीर्वाद दिया गया है, अतः यहाँ आशिष नामक अलङ्कार है।

यहाँ तक वर्णित अलङ्कारों का समुदाय ही प्रधान है। अन्य सभी अलङ्कारों को वैकल्पिक समझना चाहिए। वे सभी अलङ्कार निश्चय-रूपेण उपर्युक्त वर्णित अलङ्कारों से प्रादुर्भूत हैं ॥ ४२ ॥

काशी में बल्लभभट्ट के पुत्र त्रिमल्लभट्ट के द्वारा इस निर्मल और रमणीय 'अलङ्कारमञ्जरी' नामक ग्रन्थ की रचना की गयी है ॥ ४३ ॥

श्रीत्रिमल्लभट्ट-विरचित अलङ्कारमञ्जरी

॥ समाप्त ॥

—०—

अथालङ्कारमञ्जर्याः श्लोकानुक्रमणी

॥ इति श्लोकानुक्रमणी ॥

—०—

अथ सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका

१. अग्निपुराणम्—(हिन्दीटीकायुक्तम्), हिन्दीसाहित्यसम्मेलन, प्रयाग—१९८५

२. अलङ्कारप्रदीपः—विश्वेश्वरपाण्डेयः, काशी संस्कृत सीरीज़ बनारस—१९२३

३. अलङ्कारमञ्जरी—वेणीदत्तः, सं०–पं० बदरीनाथ झा, मिथिलासस्थान, दरभङ्गा—१९६१

४. (क) अलङ्कारमञ्जरी—त्रिमल्लभट्टः, (मातृका)–टैगोर पुस्तकालयः, लखनऊ विश्वविद्यालयः, लखनऊ।

(ख) अलङ्कारमञ्जरी—त्रिमल्लभट्टः, (मातृका)–भण्डारकरप्राच्य-शोधसंस्थानम्, पूना।

(ग) अलङ्कारमञ्जरी—त्रिमल्लभट्टः, (मातृका)–भण्डारकरप्राच्य-शोधसंस्थानम्, पूना।

५. अलङ्कारसर्वस्वम्—(जयरथकृत-विमर्षिणीटीकोपेतम्), रुय्यकः, भारतीय-विद्याप्रकाशनम्, दिल्ली—१९८२

६. काव्यप्रकाशः—मम्मटः (हिन्दीटीकोपेतः), विनोदपुस्तकमन्दिरम्, आगरा—१९८७

७. काव्यादर्शः—दण्डी, (व्याख्याकारः--धर्मेन्द्रकुमारगुप्तः), मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली—१९७३

८. काव्यानुशासनम्--हेमचन्द्रः, मेहरचन्दलक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली—१९८६

९. काव्यालङ्कारः—भामहः, (भाष्यकारः-देवेन्द्रनाथ शर्मा), विहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना— १९६२

१०. काव्यालङ्कारः—(नमिसाधुकृतटीकोपेतः)—रुद्रटः, मोतीलाल बनारसी-दास, दिल्ली— १९८३

११. काव्यालङ्कारसारसङ्ग्रहः (प्रतीहारेन्दुराजकृतटीकोपेतः)—उद्भटः, भण्डारकर प्राच्यशोधसंस्थानम्, पूना—१९२५

१२. काव्यालङ्कारसूत्रम्—वामनः, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–१९८३

१३. ध्वन्यालोकः—आनन्दवर्धनः, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली—१९८३

१४. सरस्वतीकण्ठाभरणम्—भोजराजः, सं०—केदारनाथशर्मा तथा वासुदेव लक्ष्मणशास्त्री, बम्बई— १९३४

१५. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—पी०वी० काणे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

१६. History of Sanskrit Poetics—P. V. Kane, Motilal Banarsi das, Delhi—1961.

१७. History of Sanskrit Poetics—S. K. De, Firma K. L. Mukhopadhaya, Calcuttta—1960.

१८. The Catalogue of Sanskrit MSS. in Tanjore Sarasvati Mahal Library, Tanjore.

—०—